श्रीमद्धर्म्मदासजित् सूरीश्वरेभ्यो नमः

॥ दंडी दम्भ दर्पण ॥

अर्थात्

मंगल सिंह दंडी की प्रकाशित की हुई
"माधव मुख चपेटिका" का उत्तर

श्री मोतीलालजी गांदेलालजी गांधी
पीपाड वालो की ओर से सादर भेट

प्रकाशक

मेता हाथीभाई साकलचंद (माटुंगा)

मूल्य ॥)

दुसरी आवृत्ति १०००] [वीर सम्वत् २४५४ विक्रम १९८४.

॥ वन्दे वीरम् ॥

उपोद्धात

सर्व सज्जनों को विदित हो कि बा. मंगलसिह दंडी ने (ढूंढक हृदय नेत्रांजन के भाग २ में जो प्रतिमा मडन स्तवन संग्रह हैं उस मे यह कविता "शिक्षा बत्रीशी" के रुप में प्रकाशित हो चुकी हैं उसी में से कुछ शब्दादिको को परिवर्तन करके) अपने नाम से "त्रिंशिका" के रूप में लोगों को भड़काने के अभिप्राय से इस छोटे से ट्रेकट "माधव मुख चपेटिका" को सद्धर्म प्रचारक यन्त्रालय दिल्ली सम्वत् १९७१ मे मुद्रित करा प्रकाशित कर के इस कहावत को चरितार्थ किया है "विनाश काले विपरीत बुद्धि" अर्थात् अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारी है ॥ जिस में उन्होंने श्रीमान् १००८ श्री स्वामी (जैनाचार्य) माधव मुनिजी कृत कैई पुस्तकों के प्रकाश पर धूल फेंक कर अन्धकार फैलाने का पूर्ण उद्योग किया है परंतु जो लोग साक्षर है, जिन्हों ने स्वामी जी के दर्शन करके धर्म विपयक शंका निवृत की है उन के रचे स्तवन सत्या सत्य की खोज के लिये पढे हैं और उनके उपदेशों द्वारा सनातन जैन धर्म का सत्य स्वरूप जान लिया हैं वे निस्सदेह प्रचलित मूर्त्ति पूजादि हिंसा के व्यवहारों को छोड चुके हैं ॥ लेकिन इस प्रकार के लेखो से और ट्रेकटों से इस के अतिरिक्त और कुछ फल नहीं कि हम तथा दडी जी अपने २ समय और द्रव्य को इनके प्रचार मे व्यर्थ व्यय करै (हम नहीं चहाते थे की इस "त्रिंशिका" का उत्तर हम प्रकाशित करैं क्यों कि यदि हमें यह स्वीकार होता

सो इस "त्रिशिका" का उत्तर भी हमारी समाज जब ही प्रकाशित कर देती जब कि इस को "शिक्षा मञ्जीरी" के रूप में अमर विजय जी ने ढूंढक हृदय नेत्रांजन में प्रकाशित कराई थी और जिसके उत्तर में एक छोटा सा ट्रेक्ट "भ्रमप्रमोच्छेदन" के नाम से निकल भी चुका है लेकिन बाबू सहाय ने तथा इनके सहयोगी यों ने हमको मजबूर किया की तुम इस 'त्रिशिका' का उत्तर प्रकाशित करके हमारी ढोल की पोल को खोलो अन्यथा क्या आवश्यकता थी जो इसको द्वारा प्रकाशित करा कर सर्व साधारण में प्रचार किया गया अतएव हमकोभी इस विषय पर लेखनी उठानी पड़ी) अथवा अन्य कर्ता एक धार्मिक महात्मा के लेखों में द्वेष भाव से वृथा दोषारोपण करके अपने आपको शुराह का मारीबना कर्मोंका बन्धन करे या एक प्रसिद्ध पुरुषका प्रति द्वन्द्वि बनकर केवल द्वेषी और अनभिज्ञ मनुष्यों में नाम मात्र की प्रतिष्ठा प्राप्त करले ॥ यद्यपि ऐसी २ अपार सूचक पुस्तकें इनही की तरफ से कई बार छपी हैं (इस पर भी बाबू सहाय यह दोषारोपण श्रीमान् माधव मुनि पर करके लिखते हैं कि "हमारा पुरुष प्रान्त इस विषय (ट्रेक्ट बाजी) में शांत था ढूंढक समाज के नेता श्रीयुत माधव मुनि ने कुछ कविता स्वरूप आगरे से प्रसिद्ध करा कर इस प्रान्त में भी ट्रेक्ट बाजी की शुरू आत की ॥ पाठक गण हमारे प्रति द्वन्द्वी ने पक्षपात के वशी भूत होकर यह असमंजस किया है क्या बाबू सहाय का यह मालूम नहीं है कि श्रीमान् माधव मुनि की कविता भ पहिले ता आप ही की तरफ से सम्वत् १९४८ म एक ट्रेक्ट ढूंढक विवाह गीतम" के नाम से निकल चुका

है फिर आप अपना दोष एक पवित्र महात्मा के ऊपर आरोपण कर क्यों पाक साफ बनते हो ।) और सर्व साधारण में उनका कुछ भी मान्य नहीं हुआ एसी ही दशा इस "त्रिशिका" की भी हैं परन्तु थोड़े से ही दुराग्राही पुरुषों के प्रयत्न से आगरा देहली, आदि देशों में इसका प्रचार हो गया है जिससे थोड़ी समझ के पुरुप भ्रम में पड़ गये हैं और हमको वार २ पत्र लिखते है कि इसका उत्तर प्रमाणों सहित अवश्य ही प्रकाशित होना चाहिये इस लिये हमने इस "त्रिशिका" के उत्तर में जो कुछ भी लिखा है इसका कारण त्रिशिका के प्रगट कर्त्ता या बनाने वाले ही हैं और सर्व ग्रंथों के प्रमाणों सहित ही लिखा गया है ॥

यद्यपि हमको इस बात का कोई हट या दुराग्रह नहीं हैं कि स्वामी जी कृत पुस्तकों में कोई भूल हो ही नहीं सक्ती क्योंकि अश्रवग होने से परन्तु जव तक यथार्थ में कोई भूल सिद्ध न हो जावे तब तक मन माने अनुचित असत्य आक्षेपों का उत्तर देना आवश्यक जानते हैं इस कारण "त्रिशिका" का खंड़न करते हुए भी यदि कहीं कोई सत्य आक्षेप देखेंगे तो उस पर लेखनी नहीं उठावेगें परन्तु इस "त्रिशिका" में ऐसी आशा न्यून ही है क्योंकि ग्रन्थ कर्त्ता ने अत्यंत ही पक्षपात से काम लेकर ऐसे २ कटु शब्द लिखे हैं जो दिल को दुखाने वाले हैं जिनकी झलक पुस्तक के नाम से ही सर्व साधार्ण को आती होगी । भला ऐसे सामान्य पुरुष की ओर से एक भूमंडल में विख्यात महात्मा के नाम "माधव मुख चपेटिका" नामक ट्रेकट का लिखा जाना और उसका ऐसा उद्दड नाम रखना क्या थोड़े

द्वेष का सूचित करता है ! परंतु बाबू सहाय ने जैन समाज में अपने विख्यात होने का यह एक अच्छा उपाय सोचा जो एक ऐसे विद्वान (जिसको जैन के तीनों सम्प्रदाय ने विद्वान माना है देखो "जैन प्रकाशक" मासिक पत्र जून सन् १९०९) के विरोधी बन कर यह छोटा सा ट्रेक्ट प्रकाशित किया ॥ बाबू सहाय ने तो अपना तुच्छ स्वारथ सिद्ध किया ही लेकिन आपके भोले से ही इस तुच्छ स्वार्थ का यह फल है कि फिर जैन समाज में फूट के फल पैदा होने लगे अंतमें, हम यह लिख कर ही आप से प्रार्थना करते हैं कि

विष-पूर्ण इर्ष्या, द्वेष पहले शीघ्रता से छोड़ दो,
घर फूंकने वाली फुटैली फूट का सिर फोड़ दो।
अब तो मिटा दो दुर्गुणों को सद्गुणों को स्थान दो,
खोया समय यों ही बहुत अबतो उसे सम्मान दो।

॥ शांति १ शान्ति १ शान्ति १ ॥

निवेदक
जवाहर जैन

॥ श्रीमद्धर्म्मदासजित्सूरीश्वरेभ्योनमः ॥

** मंगलाचरण **

प्रथम मनाय गण ईश शीश नाय कर
दूजें गुरु देव जू के पद शिर नाय के।

तीजें वीतराग वानी, मोक्ष की निशानी ताहि
हिरदे में ध्याय कर, पर हित लाय के॥

युक्ति औ प्रमाण सत, ग्रंथन की साखदेय
परि-परा वाद पाप चित्त से हटाय के।

दंडियों के दंभमें, फसें न भव्य जीव तातें-
दंडी दंभ दर पण-रचूं हरपाय के॥ १॥

✽ माया ✽

स्व इस को प्रणाम करि के-प्रथम हम यह बतलाना आवश्यक समझते हैं कि 'दंडी' शब्द से यहां किनसे प्रयोजन है क्योंकि 'दंडी' यह नाम संयोग-ज है इस शब्द का स्पष्ट अर्थ यह होता है कि जो दंड धारण करै सो दंडी कहैंच "दण्डेन दंडी" इति-अनुयोग द्वार-सूत्रे:

इस से वैष्णव संप्रदाय में भी जो कपि नियमित दंड धारण करते हैं तिन को 'भी दंडी स्वामी' कहते है, परंतु उनका ग्रहण यहां नहीं किंतु जो जैनाभास-पीत वस्त्रधारी और आकर्णान्त [कामतकम्मा] दंडको धारण किये रहते हैं यहां उन का ग्रहण है, सो अब उन दंडियों की ही दंभ रचना का स्वरूप दर्पणवत् प्रदर्शित करते हैं अर्थात् "भगतसिंह" दंडी ने जो 'शिक्षिका' प्रकट की है (जिसमें सनातन जैनधर्म पर निर्वाध मिथ्याआक्षेप किये हैं) अवश्य तिस का उत्तर लिखते हैं,

प्रथम आरम्भ में दंडी जी ने लिखा है कि ।

"कहा-कुत्ता से भी बुरा ढुंढा नाम धराया है"

उत्तर-शाह दंडीजी यह लेख तो आपका मिथ्यान्व दंभ का भरा है,

क्योंकि ढुंढा नाम सनातन जैन साधुओं ने अपना नहिं धराया है और तुम से मूर्खों के अतिरिक्त न कोई जैन साधुओं से ढुंढा कहता है, किन्तु पुनरुद्धार के समय जैन साधुओं की क्रिया विशेष को देख कर जैनेतरों ने 'ढुण्डिया' यह नाम रख लिया है, क्योंकि सनातन जैन साधु आत्म स्वरूप की तथा

शुद्ध निर्दोष आहार, वस्त्र, पात्र, स्थान आदिकी ढूंडना अर्थात् अन्वेषणा करते आये हैं, बस इस क्रिया विशेष को देख कर जैन साधु को 'ढुण्ढि' कहने लग गये, और जैन साधुओं ने भी इस 'ढुण्ढि' नाम को गुण निष्पन्न तथा महत्व से पूरित समझा है, क्योंकि कोषकारों ने ढुण्ढि शब्द का अर्थ "गणेश" किया है सो बहुत उत्तम है देखौ "पद्मचद्र" कोष पृष्ठ १६४ पंक्ति ३८ मी

(ढुण्ढि, पु० ढुण्ढ् + इन् । गणेश (काशी में प्रसिद्ध ढुण्ढिराज)

पुन: देखौ "शब्दस्तोममहानिधि" कोषपृष्ठ १७५ पंक्ति १

ढुण्ढि * पु० ढुण्ढ–इन् । गणेशे, काश्यां प्रसिद्धे ढुण्ढिराजि ।

पुन. देखौ "शब्दार्थचिंतामणि" कोश पृष्ठ १०३५ पंक्ति २५ मी से

ढुण्ढिः । पु । श्री गणेश विशेषे । यथा । अन्वेषणे ढुंढिरयं प्रथितोस्ति धातुः सर्वार्थ ढुण्ढित तया-भव ढुंढिनामा । काशी प्रवेश मपिको लभतेऽत्रदेही तोषं विना तव विनायक ढुण्ढि राज ।

तथा "मुहूर्त्त चिन्ता मणि" की पृष्ठ ३ पंक्ति ५ मी मे मगलाचरण की व्याख्या में–' पीयूष धारा' नाम की टीका में ऐसे लिखा है कि

ढुंढि राजः प्रियः पुत्रो भवान्याः शंकरस्य च ।

इस प्रकार अनेक आप तथा ग्रंथ कर्त्ताओं ने "ढुण्ढि" नाम गणेश जी का माना है। और 'गणेश' नाम को अनेक जैन कवियों ने "गणधर" महाराजका वाचक माना है और अपनी काव्यों में प्रयोग भी किया है इसी मान सागर यति कृत "मान सागर पद्धति" का मंगलाचरण

श्री आदि नाथ प्रमुखाः जिनेशा' श्री पुण्डरीक प्रमुखा' गणेशा सूर्यादि खटे सुताम माथा' शिवा य सन्तु मङ्गल्यमाला'

पुनः इसी श्री मानतुंगाचार्य कृत नृपतिके प्रति आशीर्वाद

जटा शाली गणे शाली शंकरः शंकरांकित'
युगादीशः शिव कुर्य्यात् दिवसतु सर्व मंगलम्

इस प्रकार यदि ढुण्ढि शब्द परम पूज्य गणधर देव का वाचक है और परम मांगलिक है तो क्या ? मंगलकारी काव्य ठेरे छिपने ही से ढूंढने से भी ढूंढा हो सकता है, किन्तु मैंने इस ढुण्ढि शब्द का अपभ्रंश करके जो ढूंढा लिया है अथवा व्याख्या किया है या ही उस के मौलने से बढ़कर मूर्ख कार्य्य किया है,

'ढुढि अन्वेषणे'

धातु से ही ढुण्ढि—ढुण्ढक—और ढुण्ढिका शब्द बनते हैं सो सब उत्तम अर्थ केही कहने वाले हैं, इसी कारण से श्री हेमचंद्राचार्य कृत "प्राकृत व्याकरण" की टीका का नाम 'ढुंढिका' है, देखो उपर्युक्त ग्रंथ की पृष्ठ २ पंक्ति ९ मी

सिद्धहेमाख्यमाख्याय, प्रोक्तं प्राकृतलक्षणं।
क्रियते ढुंढिका तस्य, नाम्ना व्युत्पत्तिलक्षणा॥

अतएव सुज्ञ जन उक्त शब्दोंको उत्तम और सार्थक मानते हैं और तू जो द्वेषबुद्धि से ढुण्ढि आदि शब्दों को अशुद्ध करके बोलता तथा बुरे बतलाता है सो तेरे पाप कर्म्मोंका उदय ??

प्रथम काव्यके दूसरे चरण में तूं ने यह लिखा है कि

जिनके नाम से रोटी खावे उनका नाम भुलाया है ॥

उत्तरः—मगल दंडीजी तुह्मारा यह कथन भी दंभ से खाली नहीं है, क्यो कि सनातन जैन साधु किसी का भी नाम लेकर रोटी नहिं याचते हैं और न किसी के नाम से रोटी मांगी हुई खाते हैं, कारण यह है कि जिनोक्त सिद्धान्तों मे कहीं भी "साधु को अमुक के नाम से रोटी मांगनी तथा खानी" ऐसे नहिं कहा है, किन्तु दंडीजी, तुह्मारा उक्त लेख तुह्मारे ही समान धर्म्म वालों पर अवश्य घटता है, क्यो कि तुह्मारे जितने भी दंडी हैं सो सब

"धर्म्म लाभ"

के नाम से अर्थात् धर्म्म के नाम का माहात्म्य जता कर रोटी मागते और खाते हैं तौभी वहतौ दयामयी धर्म्म को स्वयम् भूले हुये हैं इस का आश्चर्य्य ही क्या ? परतु वह अन्य भद्रिक और भव्य जीवों को भी हिंसामयी धर्म्म बता कर दयाधर्म्म को भुलाते हैं सो महदाश्चर्य्य है ??

प्रथम काव्य के तीसरे चरण मैं तूंने लिखा है कि

जिन मारग का नाम विसारी साध मारग निपजाया है ॥

उत्तरः—रे दंडी यह लेख भी तेरा दंभी पने का है, क्योंकि सनातन जैन साधु ओं ने न तो जिन मार्ग विसारा है और न

साधु मार्ग निपमाया है, किन्तु साधु मार्ग को धारण करते हैं, और साधु मार्ग तथा जिन मार्ग भिन्न २ नहीं है, किन्तु एकही है जो जिन मार्ग है सो ही साधु मार्ग हो सकता है नतु अन्य, क्यों कि जब तक केवलज्ञान नहिं होता है तब तक मनः पर्य्यय ज्ञानी जिन साधु पद में ही हैं तिनका जो मार्ग सो ही जिन मार्ग अर्थात् साधु मार्ग अतएव साधु मार्ग यदि निपजाया हुवा है तो जिन राज का ही है अन्य का नहिं ११

ढूंढी जी आपके तीसों ही काव्यों का चतुर्थ चरण एक साही है इस लिय उसका उत्तर हम 'ढूंढी दंभ दर्पण' के अंत में देंगे ११

दूसरे काव्य के प्रथम चरण में यह लिखा है कि

सबसा–खाने खातर मुंडा मुंडा सीस मुडाया है

उत्तर–ढूंढी ! तेरी यह कल्पना भी दंभसे भरी हुई है, क्यों कि सनातन जैन श्वेताम्बर साधु खाने के लिये मूंड नहीं मुडाते हैं, किन्तु स्व पर के हितके लिए द्रव्य तथा भाव से मुण्डित होते हैं, वर्तमान समयमें भी अनेक मुनि ऐसे हैं जिन्होंने अप्रमादि द्रव्य और सकल सुखों की सामिग्रियों को त्यागी है तो तेरा कथन कैसे सिद्ध हो सकता है, हाँ तुम्हारे ढूंढी ही प्राय खाने के लिये मूंड मुडाते हैं। इसी से तुम्हारे ढूंढी भाषा कर्मी आदि सदोष आहार भोगते हैं, यह प्रत्यक्ष वार्ता है कि जब वह एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्र को जाते हैं तब उनके आगे या साथ में भाजनादि की सामिग्रीओं से भरी हुई शकटिकायें चलती हैं और जहां कहीं मिक्षाश्न उन को नहीं मिलता है वहां उनके अंध श्रद्धालु गृहस्थ उन्हें सरस भोजन बना कर दे देते हैं और वह

बड़े मजे से माल उड़ाते है, देखो तुम्हारे ही दंडी लाभ विजय जी "स्तवनावली" ग्रंथ की पृष्ठ १७२ पंक्ति ७ मी से लिखते हैं कि

संवेगी विहार करते हैं जद (जब) गृहस्त आदमी साथ देते हैं वोझ वगैरै (ले चलने) कूं फेर मजल पर घर न होने से दाल वाटी गरम पानी कर के मजे में खाते पिलाते इच्छा-नुकूल ठिकान्नें पहुंचाते हैं अे (यह) पाप कहां छूटैगा

पुन. देखौ उपर्य्युक्त ग्रंथ की ही पृष्ठ १७३ पंक्ति दूसरी से

पेम विजय जी आगरे आये गये आदमीखाते पिलाते लाये पोंहचाये उत्तकृष्ठ (उत्कृष्टे) वाजे (कहलाये) फेर लसकर से वीर विजै (विजय) जी कलकत्ते गये नथमल जी गोल छा नें अेक एक गाड़ी [और] आदमी दीये सेवा करते ले गये पोंहचे वाद गाड़ी वलद वेच दीये ऐसे जानते पाप कहां छूटेंगे फेर दोलत विजय जी आगरे से कानपूर तक पोहचाये इसी तरें रवाज है

इत्यादि कितने ही प्रमाण हैं कहां तक लिख कर बतावें।

काव्य के दूसरे चरण में तैने लिखा है कि

वासी वीदल कंद मूल आचार का स्वाद उड़ाया है ॥

उत्तर:—रे दंडी यह लेख केवल तेरा दंभ पूरित है; क्योंकि शुद्ध—निर्दोष—वासी अन्न आदि लैने का निषेध जिनागमों में कहीं भी नही है किन्तु श्री "प्रश्न व्याकरण" सूत्र के पञ्चम सम्वर की चतुर्थ भावनाधिकार में श्री वीर पिता ने यह तो

कहा है कि अमनोज्ञ अरस विरस शीतल रुक्ष अरु शोसीण अर्थात् वासी भोजन आदि को भोगता हुआ साधु तिनके रस स्वाद पर द्वेष न करे ॥ अब ढूंढी जी यदि बुद्धि होय तो विचार करो कि शुद्ध निर्दोष वासी अन्नादि के ग्रहण करने में क्या ? दोष है । और तुम ढूंढी क्या ? वासी मिष्टान्न नहिं खाते हो, और जिस वासी अन्नादि के वर्णादि परि वर्त्तन हो जाते हैं सो तो रस चलित हो जाने से सदोष होता है, रे निरक्षर ढूंढी ऐसे तो सनातन जैन मुनि हूंये भी नहीं हैं,

ऐसे ही द्विदल का भी निषेध जिनागमों में कहीं नहीं है,

यदि कुछ विद्वता का गर्व रखते हो तो हमारे मान्य सिद्धान्तों का प्रमाण दिखलाओ अन्यथा तुम ढूंढी उत्सूत्र भाषी तो हो ही

और रे ढूंढी जो तू ने कंदमूल के विषय में लिखा है सो सचित्त कंद मूल का जिनागमों में निषेध है इस कारण सनातन जैन साधु तो जिन्हें हूं ये भी नहीं और अचित्त का कहीं निषेध नहीं ऐसो भी "दशवैकालिक" सूत्रके तृतीयाध्ययन की सप्तम गाथा का तृतीय पद

कंद मूले य सचित्ते

अब ढूंढी जी ईषत् निष्पक्ष बुद्धि से तुम्ही विचारो कि यदि कंद मूल का सर्वथाही निषेध होता तो कंद "मूलेण्य इस शब्द के साथ "सचित्ते" इस शब्द को क्यों ? जोड़ा । एसेही निर्दोष संधान को लेने का निषेध जिनागमों में नहीं है और सदोष को तो वह छूते भी नहीं ??

काव्य के तीसरे चरन मे तूँ लिखता है कि

अंदर का मुंह खुल्ला करके ऊपर पाटा लाया है

उत्तर:-रे दंभी दंडी, सज्जनों के तो एकही मुख होता है जिसका जिनोक्त मर्य्यादा से यत्न रखते हैं और दो मुखतो दुर्ज्जनोंके होते हैं अथवा तुझ दंडी के दोमुख होंगे ??

तीसरे काव्य के प्रथम चरण मे तेंनें लिखा है कि

गग्गा-गुदा मूत से धोवे पानी से डर आया है

उत्तर:-रे दंडी उक्त लेख तेरा नितान्त दंभ का है और उक्त लेखको लिखकर तूँ ने पूर्ण अभ्याक्ख्यान रूप पाप की पोट शिरपर धारण की है तू इस पाप के भार से धरा तल में नहिं धसकि जाय? कारण कि पापिओं की अधोगती ही होती है. हम इस बातको दावे से कहते हैं कि कोई भी सनातन जैन मुनि गुदा को पानीसे डरकर मूत्र से नहिं धोते. और नहीं पूँछने पर झूँठ वात वतलाते और नहीं मूत्र का नाम नो पानी ही वर छोडा है यह वार्त्ता तेरी सर्वथा मिथ्या है यदि सत्य है तो प्रमाण दे कर सिद्ध कर कि किस सुसाधु ने तो तुझ को पूँछने पर झूँठ वात वतलाई अरु किस सुसाधु ने तुझे मूत्रका नाम नोपानी वतलाया है! अरु किसके सामने वतलाया?

यह तो अवश्य है कि तुम्हारे ही पूज्यपाद आचार्य्यों ने मूत्र का नाम "अणाहार" रख छोडा है, "देखो प्रकरण माला" की पृष्ठ ८४ की पंक्ति दूसरी

---

१ उक्त वार्तो को जब तक तू किसी सुसाधु के लेख से सिद्ध न करेगा तब तक महामृषावादी समझा जायगा

"अणाहारे मोय निमाई"

उक्त ग्रंथ की उक्त पृष्ठ की ही पंक्ति ५ मी में अर्थ देखो अनाहार ने विषे मानुं (मूत्र) तथा लींबड़ा प्रमुख जाणवुं"

और सुसाधुओ रात्रिको पानी नहीं रखतेसो तो वीतराग की आज्ञा का पालन करते हैं,

यदि कहोगे कि रात्रिको जंगल जाने का काम पड़े तो किस तरह शुद्धि करते हो ?

ढूंढी जी इस का उत्तर श्रीयुक्त लाला पद्मसिंह जी उपमंत्री आगरा निवासी ने "साधु गुण परीक्षा" नामक ट्रैक्ट में बड़े विस्तार पूर्वक दिया है; तारीख १४–८–१४ को श्री साधुमार्गी जैन उद्योतिनी सभा–मानपाड़ा आगराने जिसे प्रकाशित कराया है, यदि नेत्र होंय तो उसे पढ़ लेना यहां हमने 'पिष्ट पेषण' समझ के तथा ग्रंथ बढ़ जाने के भय से नहिं लिखा है,

अब ढूंढी जी हम तुम्हारे से नम्रता के साथ पूंछते हैं कि तुम्हारे ग्रंथों के प्रमाण से जो तुम रात्रि को पानी रखते हो सो प्रत्येक ढूंढी के हिसाबसे कितना रखते हो ? और तुम्हारे ग्रंथों में कितना परिमाण लिखा है ? और वह रक्खा हुवा पानी का पात्र दैवयोग ढुलक जावे और तुम रात्रि के समय जंगल जाओ तब कैसे शुद्धि करते हो ?

अरु जो तुम्हारे किसी ढूंढी को ग्लानि के कारण रात्रि में वमन [उलटी–कै] हो जावे तो विस रक्खे हुवे पानीसे गंडूषा अर्थात् कुरले करोगे हो या नहीं ? क्यों कि मुख अशुद्ध रखना भी तो लोक विरुद्ध है,

दंडी जी हमे तो यह प्रतीत होता है कि मुख शुद्धि करने को रात्रिके समय तुम तिस रक्खेहुवे जलसे अवश्य कुरले कर लेते होओगे. कारण कि तुम्हारे आचार्य्यों ने जब ऐसाही लिख दिया है कि चौविहार अर्थात् चतुर्विधाहार प्रत्याख्यान में यदि रोगादि कष्ट होय तो गोमूत्र आदि सर्व जाति का अनिष्ट मूत पी लेने से भी व्रत भंग नहिं होय ? तो जो चूने डाले हुवे अपेय पानी की तो कथाही क्या है ? दंडी जी विना प्रमाण के तुम्हारी संतुष्टी नहिं होवेगी अत एव देखो दंडी आनन्द विजय जी=कलि काल सर्वज्ञ का बनाया हिंदी "जैन तत्वादर्श" पृष्ठ २९७ की पंक्ति ८ मीसे,

गोमूत्र–गलोय, कडु, चिरायता, अतिविष, कुडे की छाल, चीड, चंदन, राख, हरिद्रा, रोहणी, उपलोट, वज, त्रिफला, वांबुल की छिल्लक, धमासा. नाहि. आसंध रींगणी. एलुवा. गुगल. हरडां. दाल.

कर्पास की जड, जाड, वैरी कंथेरी, करीर, इन की जड पुंआड वोह थोरी आछि मंजीठ वोल वीउकाष्ठ कूआर चित्रक कुंदरुप्रमुख जो वस्तु खाने में अनिष्ट लगे वो सर्व अनाहार है यह अनाहार वस्तु रोगादि कष्टमें चौविहार प्रत्याख्यान में भी खा लेवे तो भंग नहीं.

पुनःदेखो शाह भीमसिंह माणक साहेब का संवत १९६२ का छपाया हुवा श्री "प्रतिक्रमण" सूत्र विशेष अर्थ वाले की पृष्ठ ४७८ पंक्ति ९ [पच्चक्खानभाष्य] के ३ द्वार की १५ मी गाथा का चतुर्थ चरण.

अणाहारे मोय निंबाई ॥ १५ ॥ द्वार ॥ ३ ॥

पुनः इसी उपर्युक्त ग्रंथ पृष्ठ की ४७६ पंक्ति १२ मी से इसी का अर्थ

हवे अणाहार वस्तु कहे छे अने पूर्वे कहेला चारे आहार मांहेला कोई पण आहार मां न आवे परन्तु चउ विहार उपवासें तथा रात्रि ने चउ विहारें वावरी कल्पे ते अणाहार वस्तु जाणवी तेनां नाम कहे छे

[अणा हारे क०] अना हार ने विषे कल्प ते वस्तु कहे छे [मोय के०] लघु नीति जाणवी (निंबाई के०) निंबादिक ते निंब नी छाल्ली पानडा प्रमुख पांचे ए सर्व अना हार वस्तु जाणवी आदि शब्द थकी त्रिफला कड़ फरि यातुं गळो नाहि धमासो; केरडा मूळ, बोर छालि मूळ; पावळ छालि; कथेर मूळ; चित्रो; खयरसार; मूलह; मलयागरु; अगरु; चीड; अंबर; कस्तूरी; रास; चूनो; रोहिणी वग; हळिद्र; पावली; आस गंधी; इन्द्रु; चोपचीनी; रिंगणी; अफिणादिक सर्व जाति नां विष; साजीखार, चूनो; काको; उपलोट; गुगळ; अतिविष; पूंवाड; एळीओ; थूणीफळ; भूरोखार; टंकण खार; गोमूत्र आदे देइने सर्व जातिना अनिष्ट मूत्र थोस; मंमीठ; कण यर मूल; कुंमार; थोहर मस्सादिक पंचकूम्प; खारो; फट करी; चिमेड इत्यादिक वस्तु सर्व अनिष्ट स्वाद वान छे,

अने इच्छा विना जे चीज मुख मां प्रक्षेप करीयें ते सर्वे अणाहार जाणवी-ए उपवास मां पण लेवी सूजे; अने आंबिल मध्ये पाणहारपच्चक्खाण कन्या पछी सूजे-ए आहार नुं त्रिजुं द्वार थयुं, उत्तर भेद अढार थया ॥ १५ ॥

वाह ढुंढी जी धन्य है तुम्हारे ग्रंथ कर्त्ता सुलेखकों को कि जिन्हों ने सर्व जाति के अनिष्ट मूत्र पीने की तुमको विधि बतलाई ! और कोटि शत धन्य तुम अंध श्रद्धालु ढुंढिओ को है कि जो तुम कारणवश उपवास तथा रात्रि के चउविहार प्रत्याख्यान में भी अपवित्र मूत्र पी लेते हो !

ढुंढिओ ! तुमको लज्जा नहीं आती हैकि तुम स्वयं तौ मूत्र पीने रूप घृणित कृत्य को ग्रथोक्त मानते हौ और आचरण भी करते हौ तौ भी सुसाधुओंकी मिथ्या निंदा करते हौ ! हमें विश्वास हैकि इस लेख को देखकर तुम शान्त रहौगे यदि पुन. ऐसीही कुत्तर्क करौगे तौ तुम्हारी बराबर का विगतत्रप कौन होगा ? जैसा कहौगे वैसा सुनौगे क्यों कि समयानुसार सज्जनों को भी '**शठं प्रति शाठ्यं कुर्य्यात्**' यह नीति आदर नीय है, और श्री "निसीथ" सूत्र के चतुर्थोद्देश में जो अशुचि रहने का वीतराग ने दंडविधान किया है तिसेतौ रे मूढ ढुंढी ! हम तथ्य मानतेही हैं अतएव श्री "स्थानाग" सूत्र के पंचम स्थान में पंच प्रकार की शुचि कही हैं तिन में से उचित शुचि समाचरणा से सुसाधु सदा परम पवित्र रहते हैं प्रायश्चित्त का कार्य्य सशक्त नहीं करते हैं ॥

चतुर्थ छंद के प्रथम चरण में ढुंढी तूने यह लिखा है कि

पग्घा—घर की खबर नहीं है क्या घरमें बतलाया है।

उत्तर:—रे ढूंढी तेरा उक्त लेख तुझपरही घटताहै; क्योंकि तुझ ढूंढी कोही तेरे घरकी यह खबर नहीं है कि मेरे मान्य सिद्धांतों में क्या क्या लिखा हुवा है यदि तुझको खबर होती तो "त्रिशिका" के तीसरे छंद में मुसाधुओं की व्यर्थ निंदा नहिं लिखता, अस्तु

हम इस विषय में इतना ही उत्तर लिखना समुचित समझते है कि तू एक बार तेरे राय धनपतसिंह बहादुर मकसूदा बाद निवासी का छपाया हुवा जो प्रथमाग है जिसके द्वितीय स्कंध की पृष्ठ १०३ की पंक्ति २१ मी से पृष्ठ १०४ तक के लेखको यथाचार सहित पढ़ लेना जिस से तुझे तेरे घर की खबर पड़ जायगी !!

और जो चतुर्थ छंद के दूसरे चरण में ढूंढी ने अपनी मूर्खता प्रकट कर लिखा है कि बार गुणो+मरिहंत विराजे पाठ कहां दरसाया है ॥

तथा इस के नोट में यह लिखा है कि

[ढूंढिये मानते हैं कि बारा गुण सहित और अठारा दोष रहित अरिहंत भगवंत होते हैं परन्तु बत्तीस सूत्रों के कि जिन को ढूंढिये मानते हैं मूल पाठ में कहीं भी यह वर्णन नहीं है और न बारागुण १८ दोष का स्वरूप है ?]

उत्तर:-क्यों ढूंढी क्या तेरा यह लिखना कल्पतपने का नहीं है क्यों कि सनातन जैन मुसाधु बत्तीस सिद्धांतों के मूल पाठ से ऐसा मानते ही नहीं कि अरिहंत भगवन्त बारह ही गुण सहित

और अट्ठारह ही दूषण रहित होते हैं परन्तु सिद्धान्तों के रहस्य तथा वहु श्रुतों की धारणा से तीर्थंकर पद प्राप्त अरिहंत भगवन्त को मुख्य वारह गुण सहित और अट्ठारह दूषण रहित मानते हैं, और सामान्य अरिहंतों को तो चार अट्ठारह तथा २१ और अनंत गुण सहित और अट्ठारह दूषण रहित मानते हैं, और यह तो तुम ढंढी भी तुम्हारे मान्य ग्रंथ तथा सिद्धान्तो से सिद्ध नहीं कर सकते कि सर्व अरिहंत अशोक वृक्षादि वारह गुण सहित होते ही हैं, क्यों कि अशोक वृक्षादि कितने ही गुण तीर्थंकरों के ही होते हैं सामान्य अरिहंतों के नहीं होते यदि होते हों तो तुमही तुम्हारे मान्य ग्रंथो का प्रमाण प्रकट करो ??

चतुर्थ छंद के तीसरे चरण में ढंढी ने जो भग की तरंग में यह लिखा है कि **मन को भाया मान लिया मन कल्पित पंथ चलाया है ।**

उत्तर—ढंढी का यह लेख नितान्त मिथ्या है, क्यों कि जैन सुसाधु तो मनोक्त नहीं किन्तु सिद्धांतोक्त सव भावों को ही तथ्य मानते हैं और सिद्धांतोक्त पथ में ही प्रवृर्त्तते हैं कोई भी मन कल्पित पंथ नहीं चलाया, परन्तु तुम ढंढिओं के ही सावद्याचार्य्यों ने सिद्धांतों के अर्थ अवश्य मन माने कर लिये सो हम इसी त्रिंशिका के पचम छंद के उत्तर में लिखेंगे, और तुम्हारे ही पूर्वजों ने द्वादश वर्षीय दुर्भिक्ष से पीडित होकर ही यह प्रतिमा पूजन रूप मन कल्पित पथ चलाया है; क्यों कि जिनागमों में कहीं भी तीर्थंकरों की प्रतिमा को पूजने तथा वन्दने का विधान साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका

ओंको नहीं किया है क्यों ढूंढी जी इस बात को बनारस के अनेक विद्वानों के समक्ष जैनों मे जिन को "जैन दर्शन दिवाकर" का मानस्थ प्रदान किया था उन डाक्टर हरमन जेकोबी साहब ने अपने अजमेर के पब्लिक व्याख्यान में क्या अच्छी भांति यह सिद्ध नहीं कर दिया है कि जिनोक्त ग्यारह अंग बारह उपांगों में कहीं भी तीर्थंकरों की मूर्त्ति पूजने का विधान नहीं है किन्तु यह प्रथा थोड़े काल से चली आती है देखो डाक्टर साहब के व्याख्यान का भिरू फिकरा

"No distinct mention of the worship of the idols of the Tirthankars seems to be made in the Angas and Upangas."

जिस का यह भावार्थ है कि

अंगों और उपांगों में कोई खुलासा जिकर तीर्थंकरों की मूर्त्ति पूजन का नहीं किया है

ढूंढी जो जो सठ ऐसा कहते हैं कि ग्यारह अंग और बारह उपांगों में तीर्थंकरों की मूर्त्ति पूजने का विधान है उनके मुख पर उक्त जैन दर्शन दिवाकर महोदय का उपर्युक्त कथम चपेटा के सदृश है ??

पंचम छंदके प्रथम चरण में ढूंढी ढूं ने यह लिखा है कि

चथा-चोरी देव गुरु की करके मति दर्शाया है।

उत्तर-रे ढूंढी तेरा यह लेख परिहरा बाद पाप स प्रलिप्त है, क्यों कि सनातन जैन सुसाधु कोई भी देव गुरु की चोरी उपयोग युक्त नहीं करते है और न दर्शाते हैं, परन्तु तुम ढूंढी

अवश्य ही देव गुरू की चोरी करते हो तथा हर्षाते भी हो सो ही लिखते हैं देव की चोरी तो तुम इस तरह करते हो कि देव जो तीर्थंकर भगवान् जिन्होंने साधुओं को आधा कर्म्म-आदि सदोष आहार लेने का निषेध किया है तौभी तुम मार्ग्ग में तुम्हारे अंध श्रद्धालु गृहस्थों से सरासर आधा कर्म्मी आहा-रादि लेकर खाते हो और साधु नाम धराते हो, पुनः ग्रीष्म काल में प्रायः कोई भी गृहस्थ स्नानादि के लिये तीन वार उफान आय ऐसा गरम जल नहीं करता लेकिन तुम्हारे लियें बनता है जिसै तुम लेते हौ, यह तो तुम प्रत्यक्ष देव की चोरी करते हौ, इसी तरह गुरु की भी चोरी करते हो, तुम्हारी बराबर का वाजिंदा चोर अन्य कौन है कि जो तुम ढंढिओं ने अनेक सिद्धातों में पाठातर के बहाने से नवीन २ मन माने पाठ बना कर प्रक्षेप कर दिये और कहींपर अक्षर तथा मात्राओं की घटाया बढाई कर दीनी, ढूंढी जी तुम्हारी सतुष्टि के अर्थ किंचित् उदाहरण भी क्रम से लिखते है देखो श्री "उववाई" सूत्र में चंपा नगरी के वर्णन में

'वहुला अरिहंत चेइयाइं

यह पाठ पाठातर करके प्रक्षेप करा है, क्यो कि अनेक प्राचीन प्रतों में यह पाठ नहीं है,

"ज्ञाता धर्म्म कथाग" सूत्रमें द्रौपदी के वर्णन विषे में **णमोत्थुणं** इत्यादि पाठ विशेष प्रक्षेप कर दिया है, क्योंकि वहुत से साधु तथा श्रावकों के पास प्राचीन प्रतें हैं जिन में णमोत्थुणं दैने का पाठ नहीं हैं दिल्ली में श्रीयुक्त लाला मन्नूलाल जी अग्रवाल के पास भी एक श्री "ज्ञाता धर्म्म कथाँग" सूत्र

की प्राचीन प्रति है जिस में भी द्रौपदी के नमोत्थुणं देने का पाठ नही है वह प्रति हम ने देखी है और यदि ढुंढी भी दारुण भवार्णव से भय भीत हो तो तुममी उन भावकभी से विनय पूर्वक उस सूत्रको देखकर शुद्ध होसक्ते हो पुनःश्री "उपासक दशांग" सूत्र में आनंद जी श्रावकके वर्णन विषे "अण्ण उत्थिय परिग्गहियाणि चेइ याई" इस पाठ में भी "अरिहंत" शब्द कुम बुद्धिओं ने प्रक्षेप किया है, क्यों कि अनेक प्राचीन प्रतिओं में तथा संवत ११८६ की लिखी ताड़ पत्रों के ऊपर एक श्री "उपासक दशांग" सूत्र की प्रति जो जेसलमेर के पुस्तकालय(भंडार) में है जिस में "अण्ण उत्थिय परिग्गहियाणि चेइ याई" इतना ही पाठ है,

पुनः श्री "उपासक दशांग" सूत्र के अंग्रेजी अनुवादक ए. एफ. रडल्फ होर्नेल साहब के पास इसी सूत्र की (ए. बो सी डी ई) अर्थात् पांच प्रतियें हैं जिन में ए. बी सी संख्या की प्रतियों में "अरिहंत" शब्द नहीं है ? देखो सन् १८८८ में बेपटिस्ट मिशन कलकत्ता की उक्त महोदय कृत श्री "उपासक दशांग" सूत्र के अंग्रेजी अनुवाद की छपी हुई प्रति में हिन्दी "उपासक दशांग" के प्रथम अध्ययन की पृष्ठ २३ पंक्ति १९ मी को और इस विषयमें उक्त महोदय की सम्मति यह है कि वास्तव में निम्नोक्त पाठ में तो "अरिहंत तथा चेइयाइं" ये दोनों ही शब्द नहीं हैं और पीछे में टीका कारों ने प्रक्षेप किये हैं उक्त महोदय ने युक्तिओं से सिद्ध भी

किया है देखो उपर्युक्त सूत्र को उक्त महोदय कृत अंग्रेजी अनुवाद के दोयम जिल्द की पृष्ठ ३५ पंक्ति १४ में नोट ९६ में को

" The words cheiyâim or arihanta cheiyâim, which the M S S here have appear to be an explanatory interpolation, taken over from the commentary, which says the objects for reverence may be either, Arhats (or great saint) or cheiyas If they had been an original portion of the text, there can be little doubt but that they would have been cheiyâni."

जिस का यह भावार्थ है कि

शब्द चेइयाइं और अरिहंत चेइयाइं जो हस्त लिखित पुस्तकों में है सो विदित होता है कि ये शब्द टीका से लेके मिला दिये हैं जिस टीका में लिखा है कि पूजनीय या तो अरिहंत [महर्षि] या चैत्य हैं यदि ये शब्द मूल पुस्तक के होते तो कुछ सन्देह नही कि ये शब्द चेइयाणि होता

दंडी जी कुछ भी हो परंतु यह तो वार्त्ता अवश्य उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि तुम दंडीओंने "अरिहंत" शब्द तो मिलाया ही है,

दडी जी ऐसेही अनेक सूत्रो मे तुम दडीओं ने नवीन पाठ प्रक्षेप कर दिये हैं, और जब कि अनंत ससार परिभ्रमण का भय छोड के पाठ ही परिवर्त्तनकर दिये तो अक्षर तथा मात्राओं

की पदवी बदायी कर देने में तुम ढूंढीओं को क्या मुश्किली है ? तथापि ढूंढी जी तुम्हारी संतुष्टि के लिये थोड़े से उदाहरण देना आवश्यक समझते हैं

देखो तुम्हारे ढूंढी आनंदविजय जो कि पहिले सनातन जैन साधुओं की सेवामें रहते थे फिर सनातन जैन धर्म से पतित होकर तुम ढूंढीयों का शरण लिया और तुम ने उसको योग्य न होने पर भी "कलिकाल सर्वज्ञ" बनाया जिस ने हिन्दी के "सम्यक्त्व शल्योद्धार" ग्रंथ की पृष्ठ २५६ पंक्ति १२ में "श्रीआचारांग" सूत्र का ऐसा पाठ लिखा है

"आणं या नो आणं पवेज्जा"

अब ढूंढी जी वक्तव्य यह है कि उक्त पाठ इस तरह नहीं है, क्या कि-मकसुदा बाद निवासी रायधन पतसिंह बहादुर-का छपाया हुआ जो श्री "आचारांग" सूत्र है जिसके द्वितीय स्कंध की पृष्ठ १०२ पंक्ति ११ और १२ में शुद्ध पाठ इस तरह लिखा है

जाण या णो जाणंति वदेज्जा"

ढूंढी जी तुम्हारे ढूंढी आनंद विजय जी ने उक्त पाठ में "णो" को बदल कर तो "नो" कर दिया और ढूंढी आनंद विजय जी उक्त पाठ में से "ति" को तो सर्वथा ही खा गये ? किसी कवि ने सत्य ही कहा है कि निम्ब न मीठो होय सींच गुड़ घीव सों, जा को पड्यो स्वभाव जायगो जीव सों भस्तु

ढूंढी जी ये उपर्युक्त प्रमाण हमने तुम्हारे पूर्व जों के प्रकट किये दिखाये हैं परन्तु इन उदाहरणों को आप प्राचीन (बासी)

समझ कर अवश्य अप्रसन्न होओगे, क्यों कि वासी पदार्थों से आप को बहुत अरुचि है अतएव एक उदाहरण हाल का ताजा और गरमा गरम आप के सन्मुख समर्प्पण करते हैं आशा है कि इस ताजा उदाहरण से आप का चित्त अवश्य प्रसन्न हो जायगा, लीजियै देखौ दंडी जी तुम तुम्हारा 'प्रतिक्रमण' सूत्र संवत् १९६२ माघ कृष्ण १३ को शाह भीमसिंह माणेक के छपाये हुये की पृष्ठ ४७८ पंक्ति ९ मी में (पच्चक्खाण भाष्य) के ३ द्वार की १५ मी गाथा का चतुर्थ चरण

"अणाहारे मोय निंबाई ॥ १५ ॥ दारं ॥ ३ ॥"

अरु उपर्य्युक्त ग्रंथ की पृष्ठ ४७९ पंक्ति १२ मी से उक्त चरण का अर्थ लिखा है दंडी जी तिस अर्थ का अक्षर सहित उल्लेख हम इस 'दंडी दंभ दर्प्पण' में प्रथम कर आये हैं, तिस अर्थ में तुमने ऐसे लिखा है कि चउविहार उपवास में तथा रात्रि के चउविहार मे (मोय कहता लघुनीति=गौ मूत्र आदें देइ ने सर्व जाति ना अनिष्ट मूत्र) पीने से व्रत भंग नहीं होता है ?

परन्तु जब पाञ्चाल देश के गुजरॉं वाले शहर में सवत् १९६५ में तुम दंडीओं का वैष्णवों के साथ शास्त्रार्थ हुवा था तब तुम दंडीओ ने सनातन जैन धर्म्मीओं पर भी पब्लिक व्याख्यानों में मिथ्या आक्षेप किये उस समय सनातन जैन धर्म के अग्रगण्य महोदयों ने तुमको मृषा वाद रूप पाप से बचाने के लिये पब्लिक में तुम्हें उक्त पाठ तथा अर्थ को बताया और आम पब्लिक में यह जाहिर किया कि देखौ इन दंडीओं के मान्य इस प्रतिक्रमण सूत्र में इनको व्रत में भी मूत्र पीना

लिखा है, फिर ये अपने अपराध को हमारे पवित्र धर्म्म पर लगा कर व्यर्थ हमारी निंदा करते हैं यह महदाश्चर्य है !!!

ढूंढी जी तब तुम ढूंढियों को किसना लज्जित होना पड़ा था यह तो गुजरात वाले के जैनेतर भी जानते हैं !

अतएव यहां तुम ढूंढीयों ने अपने सर्वांग मत की हानि समझ सम्मति कर के तत्पश्चात् उक्त "प्रतिक्रमण" सूत्र में से प्रथम की छपी हुई पृष्ट ४७९ भी और ४८० भी निकलवा कर दुबारा उक्त पृष्ठों की नकली नकल छपवा कर मक्ष्मायुत्ति की जिल्द में ही प्रविष्ट करदीं जिनमें से तुमने पृष्ठ ४७९ में से (मोय के०) लघु नीति भावती और भावे देह से सर्व भाविना अनिष्ट मूत्र ।) इतनी इबारत चुराई है अर्थात् इतना मजमून निकाल लिया है !

ढूंढी जी यह उभय लोक विरुद्ध चसुमने की क्रिया इस वर्तमान काल में तुम ढूंढीया ने प्रत्यक्षपणे की है ।

क्या ? अब भी यह न कहोगे कि वास्तव में देव गुरु की चोरी करने वाले ढूंढी ही वास्तिवा चोर हैं ??

पंचम प्रश्न के दूसरे चरण में ढूंढी जी ने लिखा है कि

माष्य चूर्णि निर्युक्ति टीका अर्थ से चित्त हटाया है

उत्तर०–रे ढूंढी ढूंढी तेरा यह लेख नितांत निर्विवेकीपने का है, क्योंकि सनातन जैन साधुओं ने भाष्यादि के यथार्थ अर्थों से चित्त नहिं हटाया है किन्तु तुम्हारे पूर्वज लाव्याचार्यों ने जो प्राचीन टीका आदिकों को परिवर्तन करके ढूंढी नामक अपने कल्पित पथ की तथा सिविलाचार पने को अभीष्ट सिद्ध

करने के लिये नवीन टीका आदि ग्रंथ बना लिये हैं तिनके कितने एक सूत्र विरुद्ध अर्थों को तौ हम अवश्य नहिं मानते हम अर्थात् सनातन जैन साधु ही क्या किंतु कोई भी आर्य्य विद्वान तुम्हारे सावद्याचार्य्यों के बनाये हुये सूत्र विरुद्ध अर्थों को नहिं मान सकता, दंडा जी आश्चर्य्य यह है कि हम अर्थात् सनातन जैन साधु और आर्य्य विद्वान तो क्या किन्तु तुम्हारे ही पूर्वज पार्श्वचंद्र जी ने शीलाकाचार्य्यादि टीका कारो के किये हुए अनेक वर्णित अर्थों को अप्रमाण माने हैं और सूत्र विरुद्ध अर्थ बतलाये हैं, दंडी जी तुम्हारी संतुष्टि के लिये एक दो उदाहरण भी लिख देना हम यहां आवश्यक समझते हैं सो दंडी जी कान उठा कर सुनो आंख उघाड कर देखो मकसूदाबाद निवासी राय धनपत सिंह बहादुर के छपाये हुए "आचारांग" सूत्र के द्वितीय श्रुत स्कंध की पृष्ठ ८२ पंक्ति २१ में पार्श्वचंद्र जी लिखते हैं

"इहां वृत्ति कारि लोक प्रसिद्ध मांस मत्स्यादिक नो भाव वखाण्यो छे परं सूत्र सुं विरोध भणी

ए अर्थ ईम न संभवे,

पुनः उक्त सूत्र उक्त स्कंध की पृष्ठ १५३ पंक्ति ११ में मूल पाठ

जाणं वा णो जाणंति वदेज्जा

पुनः पृष्ठ १५३ की पंक्ति ७ मी में इसकी दीपिका टीका

जाणंवा णो जाणंति वदेज्जा

पुनः पृष्ठ १५३ की पंक्ति २४ में इसकी शिलंगाचार्य कृत टीका

यदि वा जानन्नपि नाहं जानामीति एवं वदेत्

पुनः पृष्ठ १५३ की पंक्ति १७ में भाषा कर्ता पार्श्वचन्द्र जी उपर्युक्त पाठका अनुकूल अर्थ करते हुए और उपर्युक्त दोनों टीका कारों के अनर्थ का खंडन युक्तिओं द्वारा करते हुवे भाषा में लिखते हैं कि

जाण तो हुइ तो पुण हु जाणु इम न कहे एतले
पहिलो बीजो व्रत बंधे पापया
हुई इहां सिगार एक सन्देह रूपमिश्रानो ठामछे
पर कहो हुइ ते विचारी निरतो बोले
केई इम आणिसि इहां सूत्र माहि इम
कह्यो छ जाणतो हुइ तो पुण न आणुं इम
कहे इम कहतां सदहतां वीतरागना वचन
माहि सावज्ज हुइ मृपा कथा माहि जिन
भणीव सूत्र माहि वीतराग ने वचनि
जीव पुण राखिवा मृपा पुण न बोलिवो
इसोभाव जाणी गीतार्थ मुखि निरतो ओलखो
निरतो सद्दहिये प्ररूपिये ए भाव

वस्तिय ढंढी जी तुम्हारे आचार्यों की करी हुई टीकादिकों में जो सूत्र विरुद्ध अर्थ हैं जिन्हें तुम्हारे ही आचार्य नहीं मानते हैं तो सनातन जैन साधु कैसे मानलें ?
अपितु ऐसे अनर्थों को कदापि नहीं मान्य कर सके ? ?
पंचम छद के तृतीय चरण में ढंढी जी तुम ने लिखा है कि

मन कल्पित झूठे अर्थों से सांचा अर्थ मिटाया है

उत्तरः—रे छल छंदी दंडी तेरा यह लेख भी तेरी अज्ञताका ही आदर्श है, क्यो कि सनातन जैन साधु ऐसा कदापि नहीं करते हैं, परंतु दंडी जी तुम्हारे ही पूर्वजों ने मन कल्पित झूंठे अर्थ बना बना कर अवश्य सत्य अर्थों को मिटाया है

और तुम भी यथा शक्ति प्रयत्न करते रहते हो, देखो मकसूदा बाद निवासी राय धनपत सिंह बहादुर के छपाये हुए "श्री प्रज्ञापना जी" सूत्र की प्रष्ठ ५६९ मूल की पंक्ति ३ में गणधर महाराज ने तो अभाषक के दो भेद कहे हैं जैसे

अभासए दुविहे प०तं० सादिए वा अपज्जवसिए साइएवा स पज्ज वसिए

और टीका कारों ने अभाषक के तीन भेद कहे हैं देखो उपर्युक्त सूत्र की उक्त प्रष्ठकी पंक्ति १ में यथा

अभाषक स्त्रिविधस्तद्यथा-अनाद्यपर्यवसितः अनादि सपर्यवसितः सादि सपर्यवसितश्च,

और उपर्युक्त सूत्र की उक्त पृष्ठ की पंक्ति १० मीमें अनुवादक महोदय ने अनोखा ही अनुवाद किया है कि अभाषकों की गणना के समय तो दो भेद कहे और जब स्वरूप प्रति पादन करने लगे तब एकही प्रकार कह कर चुप हो गये यथा

अभाषको द्विविधः प्रज्ञप्त स्तद्यथा सादि को वाऽपर्यवसितः

दंडी जी पुनः देखिये दूसरा प्रमाण कि हाल ही में दंडी आनंद विजय जीने सिद्धान्तों के साचे अर्थ अपने मन गढंत

झूंठे अर्थों से मिटाये है सो भी नमूना मात्र तुम्हारे बोध के अर्थ हम लिख दिखाते हैं देखो ढंढी जी

जाणं वा णो जाणंति वदेज्जा

इस मूल पाठ का अर्थ रायधनपतसिंह बहादुर के छपाये हुए भी "आचारांग" जी सूत्र के द्वितीय स्कंध की पृष्ठ १५३ की पंक्ति १७ बृहत्तपा गच्छीय पार्श्वचंद्र जी इस प्रकार यथा तथ्य अर्थ लिखते हैं कि

जाण तो हुइ तो पुण हु जाणु इम न कहे एतले पहिलो मौनो व्रत येवे पास्या हुई इहां सिगार एक सन्देह ऊपनि यानों ठाम छे पर वाहो हुइ ते बिचारी निरखो बोले केई इम जाणिसि इहां सूत्र माहि इम कह्यों छे जाणतो हुइ तो पुण न जाणु कहे इम कहतां सदहतां वीतराग ना वचन माहि सावज्ज हुइ मृषा कथा माहि जिम प्रणीत सूत्र माहि वीतराग ने वचनि जीव पुण राखिवा मृषा पुण न बोलिवो इसो भाव जाणी गीतार्थ मुनि निरखो ओलखी निरखो सदहिये प्ररूपिये ए भाव

परंतु देखा ढंढी जी हिंदी सम्यक्त्व शल्योद्धार की पृष्ठ २९६ की पंक्ति १२ से उपर्युक्त सांचे अर्थ को ढंढी आनंद विजयजी ने अपने मन माने झूंठे अर्थ से किस प्रकार मिटाया है आप अपने फकीर के फकीर दयानांप्रिय भावकों को यदि काने के लिये इस प्रकार झूंठा अर्थ लिखते हैं कि

जाण वा नो जाणं वदेज्जा अर्थ साधु जाणता होवे तो भी कह देवे कि मैं नहीं जानता हूं, अर्थात् मैंने नहीं देखे हैं

अब कहिये दंडी झूंठे अर्थो से साचे अर्थों को मिटाने-वाले तुम अरु तुम्हारे पूर्वज हुवे, या कुछ कसर रही

यदि अब भी कसर रही लिखोगे तो पुनः कसर मिटाने को तीक्ष्ण चूर्ण दिया जायगा ।

छेठे छल छंद मे तूंने लिखा है कि

छवछा-छमच्छरी को चालीसा वीस चोमासे थाया है,
पक्खी वार लोगस्स काउसग्ग करना किस में गाया है

इत्यादि, सोभी लेख तेरा मूर्खपणे का है क्यो कि पडा-वश्यकों में कायोत्सर्ग पचम आवश्यक है जिसको प्रति दिन ही साधु को करना ऐसा वीर प्रभु ने सूत्र उत्तराध्यन के २६ मे समाचारी अध्यन में कहा है तिसके अनुसार ही सनातन जैन साधु कायोत्सर्ग करते हैं परन्तु नियमित चार, वारह, वीस, तथा चालीस लोगस्स का ध्यान करना तो किसी सिद्धान्त में नहीं कहा है और ना हम जैन साधु लोगस्स का काउसग्ग करते हैं लोगस्स का काउसग्ग तोसिवाय तुमसे अज्ञानी के और कोई भी बुद्धिमान नहीं मान सकता क्यों कि काया का उत्सर्ग तो हो सकता है परन्तु लोगस्स का तो कायोत्सर्ग किसी भी प्रकार नहीं हो सकता, हा सनातन जैन साधु कायोत्सर्ग रूप पच-मावश्यक में प्रतिष्ठित हुवे स्व स्व शक्ति प्रमाण चतुर्विंशति जिनस्तव का ध्यान (चिंतवन) करते हैं परतु सख्या का प्रमाण सिद्धान्तोंक्त नही वतलाते हैं स्व स्व शक्ति प्रमाण देश काल तथा गुरू (आम्नायानुसार) करते हैं इस में संख्या का प्रमाण पूछना मूर्खता का काम हैं, जैसे साधु को अनशनादि तप करने की जिनाज्ञा है परतु कोई साधु एकातर व्रत करता है कोई छठ्

छट्ठ पारणा करता है कोई और वरहका प्रकीर्ण तप करता है सब ही वीतराग की आज्ञा में समझे जाते हैं इस में नियमित संख्या का कोई प्रमाण पूछे तो वह अपनी अज्ञानता प्रकट करता है,

रे ढूंढी समाचारीओं की भिन्नता तो तुम ढूंढियों में भी है, क्यों कि जब कभी वर्द्धन संवत्सर में श्रावणादि मास की वृद्धि होती है तब खरतर गच्छीय और तप गच्छीय आदि ढूंढी भिन्न भिन्न मासादि में पर्युषण पर्व की आराधना करते हैं, कोई तीन मुंह पट्टे है, कोई चार मुंह पट्टे हैं, तथा कोई पीत वस्त्र धारकों को कल्पित धर्मी बतलाते हैं ऐसे ही कोई श्वेत वस्त्र धारी ढूंढीयों को बतलाते हैं, क्या इन बातों को तू तेरे पैंतालीस आगमों से सिद्ध कर सकता है ?

यदि सिद्ध कर सकता है तो पहिले तू तेरे सब ढूंढीओं को दंड देकर सबों की एक समाचारी करा दे तदनंतर हमारे से समाचारी विस्यक प्रश्न करने का साहस करना ! !

छठे छंद के तीसरे चरण में रे ढूंढी तू ऐसे लिखता है

मूल मात्र बत्ती सूत्रों का खोटा हठ मन ठाया है

उत्तर:—रे पाखंडी ढूंढी तेरा यह लेख प्रत्यक्ष द्वेषी पने का है, क्यों कि सनातन जैन साधु जो बत्तीस सिद्धान्तों के मूल पाठकों प्रमाण मानने का हठ करते हैं सो वह हठ खोटा नहीं करते हैं किंतु जिण पण्णत्त तत्तं । इइ सम्मत्तं ॥ इस सिद्धांत से जिन भाषित तत्वों को प्रमाण मानने का हठ करना सम्यक्त्व का ही एक अंग है, ऐसा जान कर उस अंग को धारण करते है और अन्य मतों के अभिरुद्धांश का भी मानते हैं

पुनः रे दंडी क्या तूँ वत्तीश सिद्धान्तों के मूल पाठ को प्रमाण नहीं मानता है ?

यदि मानता है तो सनातन जैन साधुओं की व्यर्थनिंदा कर के क्यो पाप की पोट वाधता है ?

त्रिंशिका के सप्तम छल छंद के प्रथम चरणमे तू लिखता है कि

जज्जा-जिनवर ठाणा अंगे ठवणा सत्य वताया है

उत्तरः—दंडी जी यह तो सत्य ही है और क्या हम स्थापना सत्य नहिं मानते हैं ? जो तुम ने श्री "स्थानागंजी" सूत्र का प्रमाण दैने की कृपा करी ॥

परंतु दडीजी वास्तव में तुम स्थापना सत्य का परमार्थ नहीं जानते हो और वृथा कोलाहल करते हो

रे दभी दडी स्थापना सत्य का भावार्थ तो यह है कि किसी वाल ने प्रस्तर (पाषाण) खंड पर तैल सिंदूरादि लगाय के उस को भैरवादि देव विशेष मान रक्खा है उस को साधु भी कारण वश भैरवादि कह देवे तो उस साधु का वह वचन सत्य है, मिथ्या नहि क्यौं कि उस वाल ने उस प्रस्तर खंड में भैरवादि की ही स्थापना कर रक्खी है, परंतु स्थापना सत्त्य का यह परमार्थ नहीं है कि स्थापना को सत्य मान कर स्थापना की ही वंदना पूजना करनी।

रे अज्ञानी दंडी औ तुम तो प्रत्यक्ष स्थापना को ही वन्दते पूजते हो और पूजन में व्यर्थ अमित त्रस तथा स्थावर जीवों की हिंसा भी करते हो सो नितान्त सूत्र विरुद्ध करते हो।

यदि कहोगे कि स्थापना के देखने से हम को साक्षात् भगवान् की याद आजाती है इसलियें हम स्थापना को वन्दते पूजते हैं

तो हम तुम से पूंछते हैं कि तुम उस स्थापना को क्यों वन्दते पूजते हो ? अर्थात् उस स्थापनाको देखने से जिस साक्षात् भगवान् की याद आई है उसेही क्यों नहीं वन्दते पूजतेहो क्या स्थापना को साक्षात्से भी बड़ी मानते हो ?

लेकिन स्थापना तो साक्षात् से बड़ी कदापि नहीं हो सकती ऐसा तो कोई भी मूढ़ मनुष्य संसार में हम नहीं देखते हैं कि जो अपनी प्रियतमा की प्रतिकृति को अनायास देख के काम से व्यामोहित होय तब अपनी साक्षात् प्रियतमा के साथ तो प्रेम पोषण न करे और उस प्रतिकृति के साथ ही आलिंगनादि काम कुचेष्टा करने लगे

यदि कदाचित् कोई मूढ़ मनुष्य प्रबल मोहोदय से ऐसा करे भी तो उसे कोई बुद्धिमान, बुद्धिमान नहीं कहेगा

रे जड़ उपासकों कुछ तो बुद्धि मे विचार करो

और यह कहना भी तुम्हारा सर्वथा सत्य नहीं है कि स्थापना के देखने ही से हम को साक्षात् भगवानकी याद आती है किंतु साक्षात् भगवान् की याद तो तुम को पहिले अपने मकान पर ही आजाती है उस के पीछें स्थापना को देखन जाते हो

यदि तुम्हीं जी तुम को मकान पर ही साक्षात् भगवान् की याद नहीं आती है तो बतलाओ कि स्व स्व स्थान से उठ कर स्थापनालय पर किस प्रकार चले जाते हो ?

दंडी जी हम ने तो मूर्ति पूजकों को प्रत्यक्ष में देखा है कि प्रायः मूर्त्ति के आगे चढाने को तंदुलादिक पदार्थ पहिले ही हाथ में ले लेते हैं उस के पीछे अपने २ मकान से निकल कर मंदिर को जाते हैं, दंडी जी इस से यह स्पष्ट सिद्ध है कि मूर्त्तिपूजकों को साक्षात् भगवान की याद तो स्थापना के बिना देखे अपने मकान पर ही आजाती है परंतु स्थापना (प्रतिमा)के ही देखनेसे याद आती है यह बात इससे सिद्ध नहीं.

पुनः तुम दंडी यह भी नहीं कह सकते हो कि भगवान की स्थापना नियमित वैराग्य भाव की ही उत्पादिका है अत एव वन्दनीय है, क्यों कि सरागी जीवो को भगवान की स्थापना तो क्या ? साक्षात् भगवान की जिन मुद्रा भी वैराग्य भाव उत्पन्न नहीं कर सकती किंतु कर्म्म बन्धनका हेतु जो राग है उस को ही उत्पन्न करा सकती है, जैसे कि तुम्हारे ही मान्य कल्पसूत्र में लिखा है कि "ध्यानस्थ वीर प्रभु को देख कर अनेक युवतीओं को वैराग्य उत्पन्न नहीं हुआ किंतु राग ही उत्पन्न हुवा और उन्होंने भगवान से प्रार्थना करी कि हे नाथ तुम हमारे भरतार बन जाओ"

दंडी जी जब कि साक्षात् भगवान को देख कर ही सरागी-ओं को विराग पैदा नहीं होता है तौ उनकी स्थापना को देखने से कैसे वैराग्य पैदा हो सकता है ? कदापि नहीं हो सकता,

यदि कहौगे कि धर्म्मानुरागी विरक्त जीवों को भगवान की प्रतिमा वैराग्य भाव पैदा करती है,

तौ दंडी जी बतलाईये कि धर्म्मानुरागी विरक्त जीवों को

वैराग्य भाव पैदा करने में वह जो भगवान की प्रतिमा है सो उपादान कारण रूप है, या निमित्त कारण रूप है ?

ढूंढी जी उपादान कारण रूप तो आप कह नहीं सकते, क्योंकि वैराग्य भाव का उपादान कारण तो जीव का क्षायोपशमिक भाव है, परन्तु प्रभु की प्रतिकृति नहीं,

और जो निमित्त कारण रूप मानते हो, तो ढूंढी जी प्रभु की प्रतिकृति को ही क्या मानते हो ? अर्थात सारे संसार के दृश्य पदार्थों को ही क्यों नहीं मानते ?

क्यो कि विरक्त जीवों को तो संसार के सब ही दृश्य पदार्थ वैराग्य भाव के उत्पादक हो सकते हैं जैसे समुद्रपालजी को चोर, कर कंडू राजा को वृषभ, द्विमुख राजा को इन्द्र स्तंभ, नमि राजा को कंकन, तथा नग्गइ राजा का आम, इत्यादि अनेक जीवोंको संसार के अनेक दृश्य पदार्थ वैराग्य भाव के निमित्त कारण हुए है

परतु ढूंढी जी समुद्र पालादिकों ने वैराग्य भाव के निमित्त कारण रूप उन चोरादिको को उपकारी जान के वंदनीय तो नहीं माने, तो फिर तुम प्रभु की प्रतिकृति का वंदनीय क्यो मानते हो ?

ढूंढी जी यह भी नियम नहीं है कि अमुक पदार्थ तो राग ही का कारण है, वह विराग का नहीं और अमुक पदार्थ विराग का ही कारण है, परंतु राग का नहीं क्यों कि जो पदार्थ सरागी को राग के निमित्त कारण रूप होते हैं वह ही पदार्थ विरागी को विराग क कारण हो जाते हैं, जैसे कि "वाणिज्य

नीति दर्पण" मे लिखा है कि श्लोक। एक एव पदार्थस्तु। त्रिधा भवति वीक्षितः॥ कुणपःकामिनी मांसं। योगिभिः कामिभिः श्वभिः। इसका भावार्थ यह है कि किसी श्मशान भूमि में एक मृतक स्त्री को दग्ध करने के लिये अनेक मनुष्य एकत्रित हो रहे थे, इतने ही में अनायास एक विरक्त महात्मा, दूसरा कामी पुरुष, और तीसरा एक कुत्ता, ये तीनो उधर से आ निकले और उन तीनों ने उस मृतक स्त्रीको एक ही समय में देखा, देख कर उन तीनों के हृदय में अपने २ भावानुसार इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ, दंडी जी, उन विरक्त महात्मा को तो क्षायोपशमिक भाव के उदय से यह विचार उत्पन्न हुआ कि यह कुणप अर्थात् मृत स्त्री का शरीर है, इस ने मनुष्य जन्म पाके हा ! कुछ तप सयम किया प्रतीत नहीं होता है, तरुणावस्था ही में इस का देह पात होगया है, ? कालरूप न्याल की गति बड़ी विचित्र है, ऐसी दशा एक दिन मेरे शरीर की भी अवश्य होगी, हा ? यह जानते हुए भी कि

ये तैल मर्दित शीश जिन पर छत्र हैं जाते धरे। हो कर सु चंदन लिप्त रहते नित्य जो मदसे भरे॥ कुछ काल के उपरान्त मरघट जा विराजेंगे यही। संस्पर्श से भी घृणा होगी-हाय क्या बाकी रही !॥ सब है विनश्वर एक अविनाशी सखा पाते यहां। उस बंधु के साहाय्य से पाते विजय जाते जहां॥ साथी सदा का लोक-औ पर लोक सुख-दातार है। सद्धर्म केवल सार है संसार यह निस्सार है॥

जो मन धर्म्म सेवन नहीं करते वह कैसे मूढ़ हम हैं और ढुंढी श्री कामी पुरुष को उदय भाव के बल से अर्थात् वेद मोहनीय के उदय से यह विचार उत्पन्न हुआ कि अहा हा क्या सुंदर यह कामिनी है, हा ? इस सुरूपा को जो मैं जीवित अवस्था में देखता तो अवश्य इस के साथ भोग विलास करता,

और उस कुत्ते को यह विचार उत्पन्न हुवा कि यह मांस है और यह मेरा खाद्य है परंतु क्या करूं यहां रक्षक बहुत खड़े हैं,

इस प्रकार उन तीनों के हृदय में एक ही पदार्थ को एक ही समय में देखने से उपर्युक्त प्रथक् २ विचार उत्पन्न हुए,

बस ढुंढी भी इसही प्रकार संसार के अन्य सब पदार्थ भी सरागीओं को तो राग के उपजाने में और विरागीओं को विराग के उत्पन्न करने में निमित्त कारण हो जाते हैं, परंतु इस से यह बात सिद्ध नहीं हो सकती कि जो पदार्थ वैराग्य भाव के निमित्त कारण हो सो अवश्य वंदनीय होय, तथा जिनोक्त सिद्धान्तों म कहीं ऐसा भी नहीं लिखा है कि जिस का भाव निक्षेप वंदनीय होय उस का स्थापना निक्षेप भी वंदनीय होवे, यदि ऐसा लेख कहीं है तो जिनोक्त बत्तीस सिद्धान्तों का प्रमाण प्रगट करो अन्यथा तुम पाखंडी ढुंढी स्थापना सत्य कह कह कर भद्रक जीवों को षट्काय के व्यर्थ पूजनादि म षट्काय की हिंसा कराते हो, इस उत्सूत्र भाषण रूप पाप से अवश्य अनंत संसार परिभ्रमण करोगे ??

दूसरे चरण में ढुंढी जी आप न लिखा कि

प्रभु प्रतिमा को पत्थर कहकर मूरख आनंद पाया है

उत्तरः—रे अज्ञ दंडी यह लेख तेरा द्वेष बुद्धि का है, क्यो कि सनातन जैन साधु किसी भी देवादि की प्रतिमा को केवल पत्थर नहीं कहते, किन्तु प्रतिमा को प्रतिमा ही कहते है, परतु जो प्रतिमा को ही परमेश्वर मानते हैं और उस प्रतिमा की ही बंदना पूजना करते हैं उन को पाषाण के समान अज्ञ तो अवश्य कहते हैं क्योंकि **ध्येय विषें जो गुण वसें सो हों ध्याता मांहि, ज्यों जड़की सेवा कियें जड़ बुद्धी है जाँहि।** अर्थात् ध्येय नाम जिस का ध्यान किया जाय, उस में जो गुण होय सो ही ध्याता नाम ध्यान करने वाले, में प्रकट होते हैं जेसे जड की सेवा करने से जड बुद्धि हो जाती है तैसे, अतएव जो प्रतिमा को ही वदते पूजते हैं सो पाषाण के समान अज्ञानी अवश्य हैं,

और दडी जी जिनागमों में साधु साध्वी श्रावक और श्राविकाओं के लिये प्रतिमा को बंदने पूजने की भगवदाज्ञा भी कहीं नहीं है, यदि तूँ दडी कुछ अभिमान रखता है तो बत्तीश जिनागमों में प्रतिमा पूजने की भगवदाज्ञा वतला, अन्यथा व्यर्थ कपोल वजाने से क्या सार निकलता है ??

दंडी जी तीसरे चरण में आपने लिखा है कि

चार निक्षेपे शोच जरा मन जिन आगम में गाया है

उत्तरः—दडी जी श्री "अनुयोग द्वार" सूत्र में चार निक्षेपा ओं का स्वरूप वीतराग ने वर्णन किया है उस सूत्रानुसार हम सर्व वस्तुओं के कम से कम चार निक्षेपे मानते हैं, परतु नाम

स्थापना और द्रव्य को वंदनीय नहीं मानते, किंतु तीर्थंकरादि पूज्य पुरुषों के भाव निक्षेप को तो वंदनीय मानते हैं; क्यों कि "अनुयोग द्वार" आदि सूत्रों में निक्षेपोंओं का वर्णन तो किया है परंतु सर्व निक्षेपे वंदनीय हैं ऐसा तो जिनागमों में कहीं कहा है नहीं, यदि तुम ढूंढी सब निक्षेपओं को ही वंदनीय मानते हो तो क्या ढूंढीजी जिन मनुष्यों के माता पितादिकों ने ऋषभ-मनि-शांति तथा महावीर आदि नाम रख दिया है उन मनुष्यों को नामनिक्षेप मान कर तुम ढूंढी वंदना क्या नहीं करते हो ?

क्या उन मनुष्यों को वंदना करने में तुम ढूंढीओं को लज्जा आती है ?

पुनः तुम ढूंढी ऐसा भी नहीं कह सकते हो कि ऋषभादि नाम वाले मनुष्य नामनिक्षेप नहीं हैं,

क्यों कि श्री "अनुयोग द्वार" सूत्रानुसार वह नाम निक्षेप अवश्य है देखो अनुयोग द्वार सूत्र में नाम निक्षेप का स्वरूप ऐसा कहा है कि जिस जीव का वा जिन जीवों का, जिस अजीव का-वा जिन अजीवों का, और जिस तदुभय का-वा-जिनतदुभयों का आवश्यक ऐसा नाम रख लेवे वह नामावश्यक है

अर्थात् वह आवश्यक का नाम निक्षेप है, और आगे भी इसी उदाहरण की अद्यामण है,

देखो अनुयोगद्वार सूत्र का वह पाठ यह है

से किंतं नामा वस्सयं ?

नामा वस्सयं जस्सणं जीवस्स वा अजीवस्स वा जीवा णं वा अजीवाणं वा तदुभयस्स वा तदुभयाणं या अवस्स- एत्ति नामकज्जति; सेतं नामावस्सयं;

अब दंडी जी यदि बुद्धि होय तो तुमही विचार करो कि अनुयोग द्वार सूत्र मे वीतराग ने नामनिक्षेप का उपर्य्युक्त स्वरूप वर्णन किया है उस के अनुसार ऋषभदेवादि नामवाले सामान्य मनुष्य ऋपभ देव भगवानके नामनिक्षेप हैं या नहीं ?

यदि हैं तो तुम क्यों नहीं वंदते हो ?

दंडी जी जरा हृदय से भी विचारो और दूसरे बुद्धिमानों का भी कहना मानो, नितान्त तीष लक्षण के ही धनी मत बनो ?!

अष्टम छल छद के पहिले दूसरे चरण में तूँ लिखता है कि

झञ्झा-झूंठ बतावें केता जेता तैने गाया है तीर्थंकर गणधर पूरव धर सबको धब्बा लगाया है

उत्तर.—रे दंभी दंडी यह लेख भी तेरा महा मृषा है, रे जैनाभास दंडी जो तुझ को सत्य लेख भी झूठे प्रतीत होते हैं सो तेरे मिथ्यात्त्व मोह का उदय है अतएव तुझै विपरीत भासै है, इस का हम क्या करै ?

तूँ अपने ओंधे भाग्य पर हाथ फेर,

रे दंडी जो तूँने मिथ्या आक्षेप किये हैं उन का तो यथार्थ उत्तर हम इस दंडीदंभदर्पण में तुझ को क्रम से देते हैं, परंतु जो तेरे पेटें पाप भरा हुआ है उस का कटु फल तो तूँही भोगेगा,

और रे ढूंढी ऐसा तो जननीने कोई जना ही नहीं है कि जो तीर्थंकर गणधरादि उत्तम पुरुषों को लज्जा लगावे, परंतु यह अवश्य है कि तुम सर्वांग मत के धारक ढूंढीओं ने "प्रति क्रमण" सूत्र में चविहार उपवास में भी मूत्र पीना छपवा कर अवश्य पवित्र जैन धर्म्म के नाम पर लज्जा लगाया है ! ?

तीसरे चरण में ढूंढी ऐं लिखता है कि

मुखपर पाटा कान में डोरा दैत्यसा रूप बनाया है

उत्तर)–ढूंढी जी यह लेख लिख कर तो तुम ने अपनी नीच बुद्धि का पूर्ण परिचय दिया है परन्तु हम तो दैत्य रूप के कहे का बुरा ही नहीं मानते, क्योंकि मुनिराजों के शोभनीय वेष को देख कर जो दैत्य नाम मंदबुद्धि मिथ्यात्वी है वह तो मुनिराजों को दैत्य रूप ही कहा करते हैं; जैसे कि श्री "उत्तराध्ययन" सूत्र के द्वादश में अध्ययन में पूज्यपाद हरकेशी मुनि के प्रति मंदबुद्धि दैत्योंने कहा है कि "कयरे आ गच्छइ दित्तरूवे" तो ढूंढी जी तुम्हारा ही इस में क्या खोट है !

अर्थात् सुसाधुओं के प्रति मिथ्यात्वियों के मलिन मुख से सहसा ऐसे वचन निकल ही पड़ते हैं, अतएव सुसाधु उन शब्दोंसे विचलित भी नहीं होते हैं, एक सत्कविने कहा भी है कि

यथा श्वान शब्द पर ध्यान गजेन्द्र लगाते ?
कविराज आप के चरित न जाने जाते ?

अरे अज्ञानी ढूंढी मुख पर मुखवस्त्रिका बांधना हम तेरे ही मान्य ग्रंथों से तुझे सिद्ध कर दिखाते हैं, जो ऐं अपने

हिये लिलार की आंख खोल कर तेरे ही मान्य ग्रंथों के प्रमाण रूप भानु को देख,

देख तेरे मान्य "महानिशीथ" सूत्र के सप्तम अध्ययन में प्रकटपने यह पाठ लिखा है कि

कन्नेट्ठियाए वा मुहणं तगेण वा विणा
- इरियं पडिक्कमे मिच्छुकडं पुरिमंद्दढं वा

अस्य संस्कृत टीका

कर्णे स्थितया मुखपोतिकया इति विशेष्यं गम्यम् मुखानंतकेन वा विना ईर्य्या । प्रतिक्रामेत् मिथ्या दुष्कृतम् पुरिमार्द्धवा प्रायश्चित्तम्

भावार्थ यह है कि

कान में घाली हुई मुख वस्त्रिका के विना अथवा बिल्कुल मुखानन्तक (मुख वस्त्रिका) के विना ईर्य्या पडिक्रमण करे तो मिथ्यादुष्कृत अथवा पुरिमार्द्ध प्रायश्चित्त का भागी होता है,

अब कहिये दंडी जी उपर्युक्त महानिशीथ सूत्र के प्रमाण से मुख पर मुख वस्त्रि का बांधना स्पष्ट सिद्ध हुवा या अब भी कुछ कसर रही ।

पुन. देवसूरि जी अपने "समाचारी" ग्रंथ में मुख पर मुख वस्त्रिका बांधने की तुम दंडीओं को इस प्रकार स्पष्ट आज्ञा देते हैं कि

मुख वस्त्रिकां प्रति लेख्य मुखे बध्वा, प्रति लेखयति रजोहरणम् ;

इस का भावार्थ यह है

मुह पत्ती की पडिलेहना कर के उस को मुंह से बांध कर रजोहरण की पडिलेहना करना

इत्यादि तुम्हारे ही मान्य अनेक ग्रंथों के प्रमाणों से मुख पर मुखवस्त्रिका का बांधना स्पष्टतया सिद्ध है,

और रे ढुंढी ढुंढी "मुखवस्त्रिका" वास्तव में कहते ही ही उस से हैं जो मुख पर बांधी जाय, देखा शाह भीमसिंह माणेक के छपाये द्वितीयावृत्ती का हित शिक्षानो रास" पृष्ठ २८ पंक्ति १६ मी से तीसरे और चौथे दोहा को, जिनमें तेरे ही साधर्मी श्रावक ऋषभदास जी रूपकालंकार में लिखते हैं कि

मुखें बांधित मुह पत्ति, हेठें पाटो धारि ।
अति हेठि दाढी थई, जोतर गले निवारि ॥ ३ ॥
एक कानें धज सम कही, खभे पछेडी ठाम ।
केडें खोसी कोथली, नावे पुण्य ने काम ॥ ४ ॥

अर्थात् मुख पर बांधी जाय वही मुख वस्त्रिका है अरु पत्ती से धर्म का कार्य्य [जीवों की यत्ना] होवे है; और यदि कुछ नीची होवे वह पाटा के समान होती है

विशेष नीची होवे वह दाढी के समान होती है
गले में होवे वह जूवा (जूनर) के समान होती है ॥१॥

एक कान में लटकावे, वह ध्वजा के समान होती है.

स्कंध पै रक्खी होवे, वह जाने मानो पछेवडी है

ऐसे ही कटि वस्त्र मे खोशी होवे तो, वह कोथली के समान दीख पडती है और न मुख से इतर स्थानों की मुखवस्त्रिका पुण्य के काम में आती है ॥ ४ ॥

वाह दंडी जी यह तो तुम्हारे ही अनुयायींने तुम्हारी अनौखे ढग से हंसी उडाइ है ?

पुनः रे दडी जैनेतर ग्रथों में भी ऐसा लेख है कि जैन साधु वही हैं जो मुख पर मुखवस्त्रिका धारण करते हैं

अर्थात् बाधते हैं, देख प्रथमावृत्ति के "शिवपुराण" की २१ मी अध्याय का २५ मा श्लोक

हस्ते पात्र दधानाश्च तुण्डे वस्त्रस्य धारकाः
मलिनान्येव वासांसि धारयन्तोल्पभाषिणः ॥२५॥

इस का भावार्थ यह है कि

हाथ में पात्र धारण करने वाले, मुख पर वस्त्र धारण करने वाले, मलिन वस्त्र धारण करने वाले, और थोड़े बोलने वाले,

जैन साधु होते हैं ॥ २५ ॥ और उक्त बात को ही पुष्टि देने के लिये रे दंडी तेरे ही मान्य गुरुवर्य्य लब्धिविजय जी दंडी ने "हरि वल मच्छी नो रास" जो कि शाह भीमसिंह माणेक का छपाया है उस की पृष्ठ ७३ पंक्ति तीसरी के ५ मे दोहा में लिखते हैं कि

सुलभ बोधी जीवड़ा, मांडे निज स्वट कर्म्म ॥
साधू जन मुख मोमती, बांधी है जिन धर्म ॥५॥

अर्थात् सूर्य्योदय होने पर सुलभ बोधी जीव जो हैं जिन्होंने निज के करने योग्य षट् कर्म्म करने में उद्यम किया है, और साधुओं ने जिनोक्त मर्य्यादा से मुखवस्त्रिका की प्रति लेखना प्रमार्जना कर के मुख वस्त्रिका मुख पर बांधी है, यह जिन धर्म्म है ॥ ५ ॥

रे दूंढी शिव पुराण के और हरि बल मच्छी के रास के प्रमाण से जैन साधुओं को मुख पर मुखवस्त्रिका बांधनी स्पष्ट सिद्ध है तो भी तुम दूंढी हठ से मुख पर मुख वस्त्रिका नहीं बाधते हो अतएव तुम जैन नहीं, किंतु जैनाभास हो,

अरु रे दूंढी उपर्युक्त तुम्हारे ही मान्य अनेक ग्रंथों के प्रमाणो से तथा अनेतर ग्रंथों के प्रमाणों से मुखवस्त्रिका मुख पर बांधना स्पष्ट सिद्ध है, परंतु तूं महा अज्ञान दूंढी अपने ग्रंथों का भी जान कार नहीं है, और ना अन्यतर ग्रंथों का जानकार है, यदि तूं जानकार होता तो जिनोक्त उपकरण के प्रति मुख पर पाटा इत्यादि अप शब्दों का उच्चारण नहीं करता ? दूंढी भी देखो यहे २ अंग्रेज विद्वान भी इस विषय पर क्या लिखते हैं ॥

The re igions of the world by John Murdock I L. D 1902 page 128 :—

The yuit has to lead a life of continence he should wear a thin cloth over his mouth to prevent insects from flying in to it "

Chamber's Encyclopaedia Volume VI London 1906, Page 268 —

"The yati to lead the life of abstinence and continence, he should wear a thin cloth over his mouth...Sit."

Mr. A F Rudolf Hoernle Ph D. Tubingen, in his English translation of Uvasagadasao, Vol. II Page 51, Note No. 144, write,

"Text muhapatti, Skr Mukha Patri. 'lit a leaf for the mouth,' a small piece of cloth, suspended over the mouth to protect it against the entrance of any living thing

आशा है कि दढी जी इन प्रमाणों को देखकर अपना हट छोड़ देंगे और सनातन जैन धर्म के सच्चे अनुयाई होकर मुख वस्त्रिका धारण करने लगेंगे ॥

नव मे छल छंद के तीन चरणों में तूं लिखता है कि

टट्टा—टटोल देख आंखों से जिन गणधर फरमाया है,
सतरां भेद प्रभु पूजा का रायपसेणी गाया है;
हित सुख जोग मोक्ष भव साथे पूजा फल वतलाया है;

उत्तरः—रे दंभी दढी क्या तुझ से ऐसे २ मिथ्या लेख लिखना ही आता है या किसी कुगुरु ने तुझे सत्य लेख लिखने का प्रत्याख्यान करा दिया है ? क्यों कि उपर्युक्त लेख तेरा नितान्त मिथ्या है,

रे हिंसा धर्मी ढुंढी "रायप्रश्नीय" सूत्र में जिन गणधर ने कहीं भी सूयरों भेदी प्रभु पूजा का फल हित सुखादि वर्णन नहीं किया है,

रे उत्सूत्रभापी ढुंढी कुछ तो झूंठ लिखने से डरा कर
दशम छन्द छंद के तीन चरणों में तूं लिखता है कि

उक्त–ठीक नजर नहीं आवे सूत्र सवाइ बताया है, अंबड श्रावक के अधिकारे क्या जिनवर फरमाया है, चैत्य शब्द का अर्थ मरोडी मन भाया गाया है;

उत्तर–रे ढुंढी यह जो तैने मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से लिखा है, सो नितान्त मिथ्या लिखा है,

रे ढुंढी "उववाई" सूत्र में अंबड श्रावक का अधिकार जैसा जिनेन्द्र देव ने वर्णन किया है वैसा ही हम मानते हैं, और सूत्रार्थ भी हम को यथार्थ भासता है, तुझ निरक्षर ढुंढी को कौनसा विशेष ज्ञान हो गया है ? सो तूं व्यर्थ कपोल बजाता है,

रे हिंसाधर्मी हठी ढुंढी तुझे मिथ्यात्व के उदय से सूत्र का विपरीत अर्थ भासता है सो तेरे पाप कर्म का उदय है और, उस पाप कर्म्म का फल तुझे अवश्य भोगना ही पड़ेगा

तथा चैत्य शब्द का अर्थ भी हम मरोड़ते नहीं हैं और अपने मन भाया भी नहीं करते हैं, किंतु व्याकरण, कोष, जैन सिद्धान्त तथा जैनेतर ग्रंथों में जो चैत्य शब्द के अर्थ करे हैं उन के अनुसार ही हम चैत्य शब्द के अर्थ प्रकरणानुकूल

करते हैं, परन्तु हम, तुम दंडीओं की तरह जैन सिद्धान्त तथा जैनेतर ग्रथों में चैत्य शब्द के जो अनेक अर्थ किये है उन सर्व अर्थों को अमान्य कर के केवल अपने स्वारथ के लिये तीन ही अर्थ नहीं करते है

देखो दंडी जी तुम्हारे गुरु दंडी आनंदविजयजी ने हिंदी "सम्यक्त्व शल्योद्धार" की पृष्ठ २४३ की पंक्ति ६ से ऐसा लिखा है कि

जिन मंदिर और जिन प्रतिमा को 'चैत्य' कहा है और चौतरे वन्ध वृक्ष का नाम 'चैत्य' कहा है इन के उपरान्त और किसी वस्तु का नाम चैत्य नहीं कहा है।

वाह ? दंडी जी धन्य है तुम को और तुम्हारे सत्यलेखक दंडी जी आनंदविजय जी को जिन्होंने सर्व कोष तथा ग्रंथकारो के किये हुए चैत्य शब्द के अनेक अर्थों को अमान्य करके केवल ऊपर लिखे हुए तीन ही अर्थ माने

यदि दंडी जी आप चैत्य शब्द के तीन अर्थ भी न मानों, और केवल "चैत्य शब्द का एक जिन प्रतिमा ही अर्थ है, चैत्य शब्द का एक जिन प्रतिमा ही अर्थ है" यों कह २ कर नाचो तो क्या तुम हठ भरे महा शठ नरों को कोई समझा सकता है? कदापि नहीं,

तथापि दंडी जी हम तुम्हारे पूज्य गुरु आनदविजय जी दडी की पाण्डित्यता तुम्हें दिखाते हैं,

देखो दडी जी तुम्हारे गुरु आनंद विजय जी हिंदी सम्यक्त्व शल्यो० की पृष्ठ २४३ की पंक्ति ६ से ऐसे लिखते हैं कि

[जिन मंदिर और जिन प्रतिमा को 'चैत्य' कहा है और चौतरे बन्ध वृक्ष का नाम 'चैत्य' कहा है इनके उपरांत और किसी वस्तु का नाम चैत्य नहीं कहा है]
परंतु देखो "कल्पद्रुम महा निधि कोष" ई० १९१४ के छपे हुए की पृष्ठ १६२ को जिस में चैत्य शब्द के १० अर्थ करे हैं यथा

ग्रामादि प्रसिद्ध महावृक्षे, देवावासे मनानां सभास्य तरौ, बुद्धभेदे, आयतने, चिताचिन्हे, जनसभाया, यज्ञस्थाने, जनानां विश्रामस्थाने, देवस्थाने च,

तथा जिनोक्त सिद्धांतों के अनुसार चैत्य शब्द का ग्यारहवां अर्थ ज्ञान है देखो "उत्तराध्ययन" सूत्र के नौंवमे अध्ययन की दूसरी गाथा का चतुर्थ चरण

"भंदि इच्छसि चेइए ॥ २ ॥

इत्यादि और भी चैत्य शब्द के अनेक अर्थ हैं, तो भी तुम्हारे गुरु वंडी आनंद विजय जी ने पक्षपात के वश अपने मन माने तीन ही अर्थ माने, वंडी जी क्या साक्षर पुरुषों का यही काम होता है कि अपना मनमाना अर्थ तो मानना और दूसरों का किया हुआ यदि सत्य अर्थ होय तो भी न मानना, हमारी समझ से तो जो मनुष्य साक्षर बन के विपरीत कार्य्य करे वह साक्षर नहीं किंतु रा स है किसी कविवरने भी कहा है कि साक्षरा विपरीता श्चेद्राक्षसा एव केवलम् भस्तु

तथा तुम बड़ी भारी गर्व्व से यह बात कहते और लिखते भी हो कि चैत्य शब्द का अर्थ ज्ञान तथा साधु तो होय ही

नहीं सकता, परंतु, यह तुम्हारा कहना और लिखना नितान्त मिथ्या है, क्योंकि चैत्य शब्द का अर्थ ज्ञान और साधु हो सकता है देखो "समवायाग" जी सूत्र में स्पष्ट पणे गणधर महाराज ने ज्ञान को चैत्य कर के वोला है,

एएसि चउव्वीसाए तित्थगराणं चउव्वीसं चेइय रुक्खा होत्था

इस का भावार्थ यह है कि इन चौवीश तीर्थकरों के चौवीश चैत्य वृक्ष प्ररूपे हैं

दंडी जी इस कथन का यह परमार्थ है कि जिस वृक्ष के नीचे तीर्थकरोंको केवलज्ञान उत्पन्न हुवा जिस केवल ज्ञान [चैत्य] की ही नेश्राय से तिस वृक्ष को चैत्य वृक्ष कहा है, जैसे ईषत्प्राग्-भारा नामक प्रथ्वी सिद्धों के निकट होने से 'सिद्ध शिला' कहलाती है तैसे

तथा रे पक्षपाती दंडी चैत्य शब्द का साधु और ज्ञान अर्थ तो वादिगर्वगालक प्रवर पंडित श्रीमज्ज्येष्टमल जी महाराज ने श्री सम्यक्त्व, सार के प्रथम भाग मे अनेक जिनोक्त सिद्धान्तों के प्रवल प्रमाणों से २४ वोलों कर के भली भाति सिद्ध कर दिया है

तथापि अत्र तुम्हारी विशेष संतुष्टि के लिये चैत्य शब्द का ज्ञान तथा साधु अर्थ हम उस प्राचीन ग्रथ के प्रमाण से सिद्ध करते हैं कि जिस ग्रथ के वनने के समय में तुम्हारे इस पीत वस्त्र धारक दंडी मत का जन्म भी नहीं हुआ था अर्थात् जिस ग्रथ को वने हुए वहुत ही वर्ष होगये, दंडी जी उस ग्रंथ का नाम "षट् पाहुड" है, और उसकी रचना दिगम्बराम्नाय के

एक प्रसिद्ध आचार्य्य "कुन्दकुन्द" जी ने करी है, जिनके विषय में दिगम्बराम्नाय के ग्रंथों में लिखा है कि "हुये न हैं, न होयगें मुनिन्दकुन्दकुन्द से" उस षट्पाहुड के चौथे बोध पाहुड की अष्टमी और नवमी गाथा में स्पष्टतया चैत्य शब्द का ज्ञान और साधु अर्थ किया है,

देखो सन् १९१० में बाबू सूरजभान वकील के छपाये हुए "षट् पाहुड" की पृष्ठ ३६ की पंक्ति २६ से

बुद्धं जं बोहन्तो । अप्पाणं चेदयाइ अण्णंच ॥
पंच महव्वय सुद्धं । णाणमयं जाण चेदि हरं ॥ ८ ॥

संस्कृत छाया

बुद्धंयत् बोधयत् आत्मानं वेत्ति अन्य च । पंच महाव्रत शुद्धं ज्ञानमयं जानीहि चैत्यगृहम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जो ज्ञान स्वरूप शुद्ध आत्मा को जानता हुआ अन्य जीवों को भी जानता है तथा पंच महाव्रतों कर शुद्ध है ऐसे ज्ञान मई मुनि को तुम चैत्यगृह जानो ॥८॥

हे ढूंढी क्या अब भी तुझे चैत्य शब्द के ज्ञान और साधु अर्थ होने में कुछ सन्देह है ?

यदि अब भी कुछ सन्देह है तो पुनः देख षट् पाहुड की पृष्ठ ३७ की पंक्ति ६ से उक्त ही गाथा का भावार्थ

भावार्थ—जिस में स्वपर का ज्ञाता बसे है ऐसी चैत्यालय हैं । ऐसे मुनि को चैत्यग्रह कहते हैं

पुनः देख पृष्ठ ३७ की पंक्ति ८ से

चेइय वंध मोक्खं । दुक्खं सुक्खं च अप्पयं तस्स ॥
चेइ हरो जिण मग्गे । छक्काय हियं भणियं ॥ ६ ॥

संस्कृत छाया

चैत्यं वंधं मोक्ष दुक्ख सुख च अर्पयतः । चैत्यग्रहं जिन मार्गे षट्काय हितं करं भणितम् ॥ ६ ॥

अर्थ–वंध मोक्ष, और दुख सुख में पड़े हुवे छैकाय के जीवों का जो हित करने वाला है उस को जैनशास्त्र में चैत्यग्रह कहा है ॥ ६ ॥

पुन देख पृष्ट ३७ की पंक्ति १४ से उक्त ही गाथा का भावार्थ

भावार्थ–चैत्य नाम आत्माका है वह वंध मोक्ष तथा इन के फल दुःख सुख को प्राप्त करता है । उस का शरीर जब षट्काय के जीवों का रक्षक होता है तबही उसको चैत्यग्रह (मुनि-तपस्वी-ब्रती) कहते हैं ॥ ९ ॥
ग्रह (मुनि तपस्वी-ब्रती) कहते हैं ॥ ६ ॥

पुनः देख पृष्ट ३७ की पंक्ति १८ से पंक्ति १९ मीं तक के स्पष्टीकरण को

अथवा चैत्य नाम शुद्धात्मा का है। उपचार से परमौदारिक शरीर सहित को भी चैत्य कहते हैं इत्यादि

और तुम दंडी श्री उपाशकदशाग में आनंद श्रावक के वर्णन में, तथा श्री उववाई सूत्र में अवड श्रावक के वर्णन विषें जो चैत्य शब्द का प्रतिमा अर्थ सिद्ध करने के लिये "अर्थापत्ति"

से अर्थ लेवे हो, और तुम्हारे गुरु ढूंढी आनंद विजय जी ने भी लिया है, सो वस्तुतः नितान्त मिथ्या, और उत्सूत्र प्ररूपण रूप है; क्योंकि श्री अनुयोग द्वार श्री सूत्र की टीका में सूत्र के बत्तीस दूषण कहे हैं, उन में अर्थापत्ति से अर्थ लेना है सो सूत्र का २६ वाँ दूषण है

देखो राय धनपतसिंह बहादुर मकसूदाबाद निवासी के छपाये हुए "अनुयोग द्वार" सूत्र की टीका की पृष्ठ ६१६ पंक्ति ७ में

'अत्था वत्ती दोसो २६'

पुनः देखो उपर्युक्त सूत्र की पृष्ठ ६१७ की पंक्ति ११ भी से उक्त २६ वें दूषण का स्पष्टीकरण

यत्रार्थापत्त्यानिष्टमापतति तत्रार्थापत्तिदोषो यथा गृह कुक्कुटो न हंतव्य इत्युक्तेऽर्थापत्त्या शेषघातोऽदुष्ट इत्यापतति;

रे ढूंढियो खेद है कि तुम अपने तुच्छ मन्तव्य के सिद्ध करने को गणधररचित सिद्धान्तों को भी दूषण युक्त बनाते हो ?

कुछ तो अमित संसार परिभ्रमण से डरो;

तथा तुम ढूंढी दुर्जनता से ऐसी भी कुतर्क करते हो कि यदि चैत्य शब्द का अर्थ साधु होवे तो चैत्य शब्द भी लिंगमें तो बोलाही नहीं जाता है तो साध्वीको क्या कहना ?

ढूंढी जी यह कुतर्क भी तुम्हारी कुमतिजन्य और अल्पज्ञ पण की है, क्योंकि प्राकृत में यह नियम नहीं है कि लिंग का व्यत्यय न हो अर्थात् जो शब्द पुल्लिंग वाची हो सो स्त्री लिंग वाची तथा नपुंसकलिंग वाची न हो. अपितु प्राकृत में तो लिंगेषु तेषु भवति कश्चिदत्र ध्यासे यद्व्यत्ययस्तु

इस "पद्य प्राकृत व्याकरण" के प्रमाणुसार, कहीं लिंग का व्यत्यय भी हो जाता है, अर्थात् जो शब्द पुल्लिंग वाची होता है उस का प्रयोग स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग में भी हो जाता है. ऐसे ही स्त्रीलिंग वाची शब्द का भी प्रयोग पुल्लिंग में हो जाता है जैसे कि गणधर महाराज ने श्री "ज्ञाता धर्म कथा" जी के अष्टमाध्ययन में "मल्ली" शब्द स्त्रीलिंग वाची है, तो भी तिस का पुल्लिंग में प्रयोग किया है यथाः—

मल्लिस्स अरहा दुविहा अंतगड भूमी होत्था

यदि दंडी जी प्राकृत में लिंग का व्यत्यय न होता तो गणधर महाराज "मल्लिस्स" ऐसा उच्चारण नहीं करते. किंतु "मल्लिए" ऐसा कहते तथारे दंडी "मधुकर" शब्द पुल्लिंग वाची है तो भी आचार्य्यों ने "कल्प सूत्र में पचम पुष्प माला के स्वप्नाधिकार विषे "मधुकर" शब्द का प्रयोग स्त्री लिंग में "महुयारि" ऐसा किया है

अतएव यह स्पष्ट सिद्ध है कि प्राकृत में लिंग का व्यत्यय भी होजाता है, परन्तु तुम दंडी प्रायः आर्ष वचनों के अनभिज्ञ हो अतएव व्यर्थ कुतर्क करते हो ? ?

ग्यारहमे छल छंद में दंभी दंडी तूं लिखता है कि

डड्डा-डर नहीं रहा किसी का साचा पाठ छिपाया है। अंग सात में आनंद श्रावक के अधिकारे गाया है। पाठ खुलासा देख अकल के अंधे नजर नहीं आया है॥

उत्तरः—रे दंभी दंडी यह जो तूंने कलुप से क्लेशित हो लेख लिखा है सो नितान्त मिथ्या लिखा हैं,

रे ढंढी पर भव का डर तो तुम को और तेरे पूर्वजों को नहीं रहा कि जो सप्तमांग में आनंद श्रावक के अधिकार में अन्नउत्थिय परिग्गहियाणि इत्यादि पाठ में अरिहंतादि शब्द प्रक्षेप करके अपने तुच्छ मंतव्य (हिंसामयी धर्म) को पुष्ट करना चाहा है, सो हम इस ढंढी दंभ दर्पण में तेरे पंचम छेद के उत्तर में सप्रमाण लिख कर सिद्ध कर चुके हैं, अतएव पिष्टपेषण समझकर यहां नहीं लिखते हैं,

तथा ढंढी सप्तमांग जो " उपासकदशांग " है जिस विषें आनंद श्रावक के अधिकार में तेरा मंतव्य जो मूर्ति पूजन करन का है जिस की गंध भी नहीं है, यदि सप्त मांग विषें आनंद श्रावक के अधिकार में मूर्तिपूजन करने का खुलासा पाठ है तो पंडित मानी ढंढीजी लिख कर प्रकट करो अन्यथा तुम ढंढी महामृषावादी तो हो ही;

और कपट कल्क का अंत ही नहीं, किन्तु तूं नेत्रांध भी प्रतीत होता है, जो तूंने सप्तमांग का देखे बिना ही ऐसा लिख मारा कि "सप्तमांग में आनंद श्रावक के अधिकार में पाठ खुलासा देख"

रे ढंढी किस वर्णन का खुलासा पाठ तूं हम को दिख-लाता है ?

प्रथम तूं तो देख ले ?

वाह ! ढंढी धन्य है तुम को तैंने तो स्वयं नष्ट परान्ना शयति इस कहावत को पूर्णतया चरितार्थ की है अस्तु ! ?

रे ढंढी बारहमें प्रश्न छंद में तूं लिखता है कि

ढद्दा–ढुंढिया नाम धराया ढुंढ ढुंढ मन भाया है; पर मारथ को भूल ढुंढ नहीं मूढ गूढ को पाया है झूंठ कपट शठ नाटक कर के जग सारा भरमाया है।

उत्तरः रे दंभी दंडी ! यह निःसार लेख लिख कर तूंने व्यर्थ कागद काला किया है, हम इस का इतना ही उत्तर लिखना समुचित समझते हैं कि, तूँ दंडी महा अज्ञानी है कि जो तूँ सुसाधुओं के प्रति व्यर्थ अपशब्द बोलता है और भद्रक जीवों को तू अपने दंभ रूप फंद में फसाने का प्रयत्न करता है, परंतु रे दुर्वादा दंडी स्मरण रख कि जो कोइ अपक्षपाती सज्जन हमारे रचित इस "दंडीदंभदर्पण को आद्योपान्त पढ लेवेगा वह तो तेरे दंभ रूप फंद को इस प्रकार तोड देवेगा जैसे गजेन्द्र मृणाल को तोड देताहै।

रे दुर्म्मुखी दडी तूँ यह तो बतला कि तूने क्या पर-मार्थ पाया है

रे दंभी दंडी क्या मूर्त्तिपूजन में अगणित त्रस स्थावर जीवों की हिंसा करना और तिस में धर्म्म मानना यही जिनागमों का गूढार्थ तैंने समझा है !

वाह ! दंडी धन्य है तेरे निरक्षरभट्टाचार्य्य गुरु को कि जिसने तुझ को यह हिंसामयी धर्म्ममानने की कुमति प्रदान की ? ?

रे कुटिलमती दंडी तेरहमे छंद में तूं लिखता है कि तत्ता-तीर्थ भुलाये सारे प्रभु का धाम भुलाया है; अपने आप तीर्थ बन बैठे अपना धाम मनाया है; वादे पूजे माने मानता सेवक के मन भाया है

उत्तर: रे विवेक शून्य ढंढी तैने यह लेख केवल द्वेष बुद्धि से मिथ्या लिखा है, क्योंकि हम ने तीर्थंकरों के किये हुए साधु-साध्वी-श्रावक-और श्राविका रूप जो चार तीर्थ हैं उन में से कोईसा भी तीर्थ नहीं भुलाया है, किंतु हम तीर्थंकर कृत तीर्थों की आज्ञानुसार यथा योग्य पर्युपासन करते हैं और अन्य भव्य जीवांसे भी कराते हैं,

और रे मूढ ढंढी लोकाग्र पद्धिया सिद्धा इस वचन से प्रभु का धाम जो (लोकाग्र) सिद्ध क्षेत्र है उस को भी हम ने न ीं भुलाया है, किंतु " संस्थान विचय " नामक धर्म ध्यान के चतुर्थ पादका जब स्वरूप चिंतन तथा वर्णन करते हैं तब उस प्रभु के धाम का भी अच्छी भांति से चिंतन तथा प्रतिपादन करते हैं,

परंतु तुम ढंढी के माने हुए कुतीर्थों को और कल्पित धाम जो सर्वव्यापि हैं उन को तो हम ने अवश्य भुलाये हैं, क्यों कि उन को तीर्थ मानने का और तिन के स्मरण करने का वर्णन जिनाज्ञ बत्तीश सिद्धांतों में कहीं भी नहीं है

रे मूढ ढंढी ! भगवन्त वीर प्रभु ने तो भी " भगवती " जी सूत्र के वीस में शतक के अष्टमोद्देश में श्री गौतम स्वामी के पूछने पर श्रीसंघ को तीर्थ कहा है और उसके चार भेद बतलाये हैं, यथा

तित्थ भंते तित्थ ? तित्थ करे तित्थ ?
गोयमा, अरहा ताव नियमं तित्थमरे
तित्थं पुण चाउ वण्णा इण्णे समण संघे
तंजहाः—समणा समणीओ, सावमा, साविमाओ

इस का भावार्थ यह है कि, गौतम भगवान् सविनय वीर प्रभु से यह प्रश्न करते हैं,

हे पूज्य, तीर्थ जो चतुर्विध संघ रूप है, उसे तीर्थ कहिए अथवा तीर्थंकरको तीर्थ कहिये ?

गौतम स्वामी के इस प्रश्न का भगवान वीर प्रभुने यह उत्तर फरमाया कि,

हे गौतम अरहत तो प्रथम नियमा तीर्थकर हैं—तीर्थ प्रवर्तावते हैं, इस हेतु से परंतु तीर्थ नहीं.

तीर्थ तो चार वर्ण हैं जिस में ऐसा क्षमादि गुणो कर के पूर्ण स्मरण सघ है, तिस के चार प्रकार है.

सो चार भेद यह हैं कि: साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका

पुन इसी प्रकार सघ रूप तीर्थ के चार भेद श्री "स्थानाग" जी सूत्र के चतुर्थस्थान में वीर प्रभु ने फरमाये हैं

चउव्विहे, समण संघे-पण्णत्ते;

तंजहा:—समणा, समणीओ, सावगा, सावित्राओ,

एवं जिनोक्त सिद्धान्तों के विपें तो, साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध के भाव तीर्थ वर्णन किये हैं,

तथा रे ददी जम्बूद्वीप नामा द्वीप के इस भारतवर्प क्षेत्र में द्रव्य तीर्थ भी श्री "स्थानाग" जी सूत्र के तृतीय स्थान में मागध, वरदाम, और प्रभास, ये तीन ही तीर्थ वर्णन किये हैं यथा:—

तओ, तित्था—पणणत्ता;

तं जहा:—मागहे, वरदामे, पभासे.

रे हठी ढूंढी इन के अतिरिक्त और कोई भी तीर्थ इस भारत वर्ष में भगवन्तों ने नहीं कहे

यदि जिनोक्त बत्तीस सिद्धांतों में कहे होवें तो पेश द्वारा प्रकट कर, परंतु तेरे साधुमार्गियों के कपोल कल्पित ग्रंथों का प्रमाण हम नहीं मानेंगे,

रे अज्ञानी ढूंढी, हमही नहीं, किंतु तेरे साधुमार्गियों के रचित ग्रंथों (पोथा पोथाओं) में ऐसी अघटित बातें लिखी हैं कि जिन को कोई भी आर्य्य बुद्धिमान् नहीं मान सकता, जैसे कि शत्रुंजय पहाड़ का माहात्म्य वर्णन करते हुए तुम्हारे साधुमार्गी लिखते हैं कि:—

सेत्तुंजे पुंडरीओ सिद्धो मुणि कोडि पंच संजुत्तो
चित्तस्स पुण्णिमाए सो भणइ तेण पुंडरीओ ॥ १ ॥

इस का भावार्थ यह है कि चैत्र शुद्धा पूर्णिमा के दिवस शत्रुंजय पर्वत के ऊपर ऋषभदेव भगवान के प्रथम गणधर पुंडरीक जी नाम के, पांच करोड़ मुनियों के साथ सिद्ध हुए अर्थात मोक्ष को प्राप्त भये। अतएव शत्रुंजय पर्वत का नाम "पुंडरीक" गिरि हुआ ॥ १ ॥

अब कहिये ढूंढी जी क्या इस तुम्हारे साधुमार्गियों के अनघटित कथन को कोई भी विभावान बुद्धिमान् मान सकता है ?

कदापि नहीं मान सकता, क्योंकि तीर्थंकर के परिवार से गणधर का परिवार विशेष नहीं हो सकता, जैसे वृक्ष के स्कंध से शाखा मोटी नहीं होती वैसे, तो रे अज्ञानी ढूंढी ! श्री ऋषभदेव भगवान के तो सूत्र भी " जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति " में फकत चौरासी हजार ही साधु कहे हैं, यथा—

उसभस्स णं अरहउ कोसलि य स्स
उसभे ण पामुक्खाओ चुन्नसी इं समण
साहस्सी ओ-उक्कोसिया-समण संपया होत्था.

तव उन के प्रथम गणधर पुंड रीक जी साथ पाच करोड़ साधु मुक्ति जाने वाले कहाँ से आये ?

और रे विचार शून्य दंडी, क्या पुंडरीक जी गणधर के दो, चार अर्व साधु थे कि जिन में से पाच करोड़ साधु तो एक ही साथ मोक्ष हो गये अतएव यह बात नितान्त मिथ्या ही प्रतीत होती है.

यद्यपि उत्सूत्र भाषी दंडी आनंद विजय जी ने स्वकृत जैन तत्वादर्श की पृष्ठ ३०३ में उपर्य्युक्त अघटित वर्णन को लोक मान्य कराने की इच्छा से इस "कोटि" शब्द को संज्ञान्तर सिद्ध करने की मिथ्या चेष्टा की है. परंतु उनकी यह मिथ्या चेष्टा निरर्थक ही है, क्योंकि इन के पूर्वज दंडी हरिसूरि जी ने यह बात स्पष्ट सिद्ध कर दी है कि पुंडरीक गणधर के साथ पाच कोटि, तथा पाडवों के साथ वीश कोटि मुनि मोक्ष गय हैं, तहा कोटि शब्द का अर्थ संज्ञातर बाचक नहीं लेना, किंतु संख्या सज्ञक शत लक्ष का एक कोटि लेना। जरा आख खोल कर देखो धन विजय जी कृत "चतुर्थस्तुति निर्णय शंकोद्धार" की पृष्ठ १८२ पंक्ति १० मी से:-श्री शत्रुंजय ने उपरे जिहा मुनि मोक्ष गया छे त्या कोट्यादि संख्या वाचि शब्दो मा शत सहस्र ने लाख सज्ञा शत लक्ष ने कोटि संज्ञा पूर्वाचार्य्यों ए लखी छे पण मतातरवाक्ये संज्ञातर संज्ञा कही न थी

"तथा हि श्री हीरप्रश्ने"

तथा श्री शत्रुंजयस्योपरि पंचपाण्डवैः समं साधूनां विंशति कोट्यः सिद्धा इति श्री शत्रुंजय माहात्म्यमध्ये प्रोक्तमस्ति सा के टिर्विंशतिरूपा शतसंख्या वेति,

अत्र शतसंख्या कोटिरस्तीयते न तु विंशतिरूपेति बोध्यं ४

भावार्थ ॥ श्री शत्रुंजय ने ऊपरे पांच पांडव साथे बीस कोडी साधु सिद्ध थया शत्रुंजय माहात्म्यादिक मां कह्युं छे ते कोडी बीस रूपे संख्योत्तर गणवी के संख्या संज्ञा ए सो लाख रूपे गणवी ए प्रश्न श्री विमर्षि गणि नो तेनो उत्तर श्री तपा गच्छ नाय के श्री हीर सूरि जी ए दीधो के इहां सो लाखनी एक कोडि अणाय छे पण बीस रूपे न जाणवी

ढूंढी जी, उक्त धनविजय जी ढूंढी के लेखानुसार तुम्हारे गुरु ढूंढी आनंदविजय जी ने जैनतत्त्वादर्श में जो निथान्त मिथ्या चेष्टा करी है सो वस्तुतः निरर्थक ही की है अस्तु ढूंढी जी ! इसही प्रकार तुम्हारे सम्प्रदायाचार्यों ने कृत्रिम तीर्थों की [पहाड़ों की] अनेक अघटित महिमायें वर्णन कर २ के भद्रक जीवों को पहाड़ों में भटकाये हैं और मिथ्यात्व की करणी कराई है,

रे हिंसा धर्म्मी ढूंढी जंगम तीर्थ जो साधु साध्वी श्रावक, और श्राविका हैं उन की भक्ति विधान को छोड़ कर कुगुरु कल्पित स्थावर तीर्थ जो पहाड़ादि हैं उन में जो भटकते हैं और वहां प्रतिमा पूजन में अगणित त्रस तथा स्थावर जीवों की हिंसा करते हैं उन हठ मरे महा शठ नरों को हम तो महा

मिथ्यात्वी ही मानते हैं, हम ही नहीं । किंतु जो मनुष्य एक वार भी जिनोक्त सिद्धाता को गुरुगम्य से वाच लेवेगा वह ही तिन हिंसाधर्म्मिओ को मिथ्यात्त्वी ही मानेगा.

रे दंभी दंडी, तेरे ही दंडी हुक्रम मुनि ने स्थावर तीर्थों की यात्रा करने को तथा प्रतिमा पूजन करने को सम्यक्त्व धर्म्म की क्रिया नहीं मानी है ?

देख तेरा ही दंडी हुकम मुनि " अध्यात्म प्रकरणके अतर-गत " तत्वसारोद्धार " ग्रंथ की पृष्ठ ४१० की पक्ति १५ मी से लिखता है कि—

तीरथ जात्रा व्रत नियम करे ते पण पुन्य होय तो थाय ते वात पण मिथ्यात छे शा माटे के स्थावर तीर्थ नी जात्रा ए जवु आववुं ते कोई धरम मा नथी केम के तेने कोइ गुणगणानी अपेक्षा लागे नहीं.

शिष्य-स्वामी चोथा गुण गणानी ए करणी छे अने तमो पण सम्यक्त द्वार ग्रंथ मा तथा मंदीर स्वामी नी ढालो प्रमुख घणा शास्त्रो मा लावेला छो ने तमे इहा ना केम केहो छो.

गुरु—हे महानुभाव अमे जे सम्यक्त द्वार प्रमुख ने विशे लाव्या छिये ते नु कारण साभल एक तो कलप वेहे वार आकाल ना घणा लोको नु मानेलुं माटे तथा वीजु कारण के ढुडीया लोको वीलकुल प्रतिमा उठावी ने वेठा छे ते आपणा पक्ष ने मान देखाडवा वास्ते तथा त्रीजुं कारण एके सासन सारु दीसे एटला माटे अमे लावेला छीये हव अमे जे चोथा गुण ठाणानी करणी नी ना कही तेनुं कारण साभल जे लोको ने सुरीआभ देव नो तथा द्रुपती प्रमुख नो अधिकार देखाडीये छीये परंतु ते करणी

मां विचार घणो छे आ माटे के जिनप्रय देववा प्रमुख घणा देवे पूजा देव पणे उपम्या ते बखत करी छ पण तेने भगवाने सम कितो कया नथी ते तो मिथ्यात्वी छे अने ते देव नवा उपने एटले सर्वे पूजा करे एवुं सुत्र जोतां मालुम पडेछे परंतु कइ समकीती मिथ्यात्वी नो नियम रह्यो नथी तेम कइ फरीथी पूजा करवानो अधिकार काई नेछे नहि

पुनर्तुम्हारी हुक्म मुनि "अध्यात्म प्रकरण" के अंतरगत "मिथ्यात्व विध्वंसन" नामक ग्रंथ की पृष्ठ ११४ पंक्ति ९ मीसे लिखतेहैं कि (संघ तीर्थ जातरा प्रमुख करवां करावचां ते पण सर्वे शुभ करणी छे तथा जसवन्ते जी उपाध्याये समकित मा सडसट बोलनी सझाय मे लिखे एवुं कह्यु छे के आठ प्रभाविक साधु न होय तो तीर्थ जातरा प्रमुख करवा छे क प्रभाविक छे एटले ए कह्यो आठ प्रमाविक मां छे नहिं तथा तेने समकित नो पण नेम छे नहि)

पुन तेरी हुक्म मुनि "अध्यात्म प्रकरण" के अंतरगत "तत्वसारोद्धार" की पृष्ठ ४६६ पंक्ति १४ मी से लिखते हैं कि

[तीर्थ जात्रा वरत नेम तथा बाह्य तप तथा व्यवहार क्रिया इत्यादिक ने विशे जे रच्या पच्या रहे छे ते सर्व पुन्य ना इछक छे मे तेने आसवी कहिये]

पुनःतुम्हारा तेरी हुक्म मुनि "अध्यात्म प्रकरण" के अंत रगत 'तत्वसारोद्धार' की पृष्ठ ४०० पंक्ति २१ मी से स्पष्ट तया यह लिखते हैं कि—

एवा पाठ कोई सिद्धात मा जोवा मा आवता नथी जे-फलाणा तीर्थे गया थकी मुक्ति थाय तथा फलाणि तिथी नो उपवास करवो ते थकी मुक्ति थाय तथा ते तप नु उजमणु करवुं तथा गुरु ना नव अंग पूजवा तथा पोथी पूजवि तथा वास नखाववो तथा जोग उपधान वहेवा तथा तेनि विधि करा-ववी तेना रुपैया गुरु ने देवा इत्यादिक हाल मा ए वहेवार घणो दिसे छे ने सुत्रमा पाट नथि तेनी परुपणा करवी ने जे सुत्र ने विशे आत्मस्वरूप थीज मुक्ति कहि ते न परुपे तेने अभिनिवेशी मिथ्यात्व कहिये केम के ते जाणी ने सिद्धांतनी रीते परुपता नाथि पोतानी मतलब नु परुपे छे तेनेअभीनिवेशी मिथ्यात्व **कहिये** २

कहियै दंडी जी ! तुम्हारे ही दंडी हुकम मुनि के उपर्युक्त लेख से जो शठ तीर्थ यात्रादि शास्त्राविहित कृत्य करने का उपदेश देते हैं अथवा करते और करावते हैं उनके मिथ्यात्वी हौने में क्या अब भी कुछ संदेह है ?

दडी जी तुम में से भी जो हुकम मुनि के सदृश भव भय भीरु होता है, और जो जिनोक्त सिद्धान्तौं की स्वाध्याय गुरु गम्य से करता है वह तौ तुम्हारे कल्पित जड (स्थावर) तीर्थों को अवश्य अत करण से भुलाय ही देता है परंतु तुम तो कोई विलक्षण ही निरक्षर हो ! जो तीर्थंकर कृत जंगम तीर्थों को भूल कर काल्पित स्थावर तीर्थों की पक्ष करतें हो

रे मंगल हटी, तेरे सावद्याचार्य्यों के किये हुये शत्रुंजयादि स्थावर तीथ सब आधुनिक (थोड़े काल के वने हुये) हैं क्योंकि

यह तो बालक हूं अति ऐसे,

खामी बुद्धि विचार में ॥

हम सब गुरु चेताते हैं ॥ आधुनिक नजर आते हैं ॥ १ ॥

यद्यपि यह भजन तुम्हारे मान्य ग्रंथों के प्रमाणों से सुयो भिन्न नहीं है तथापि हम इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि उक्त भजन में गिरिनारि आदि तीर्थोत्पत्ति के जो २ कवि ने संवत दिये हैं सो करीब २ सत्य ही हैं क्यों कि वहां के शिला लेखों में पद्य में कहे हुए संवत् से प्राचीन संवत् नहीं मिले हैं ऐसा हम ने भी अनेक प्रामाणिक यात्रियों से निश्चय किया है, अतएव पूर्वोक्त स्थावर तीर्थ सर्व अर्वाचीन काल के ही हैं ??

तेरहमें छंद के दूसरे चरण में रे मगरू तू लिखता है

अपने आप तीर्थ बन बैठे अपना धाम मनाया है

उत्तर:—ढूंढी, यह लेख तेरे अविवेकीपने का है, क्यों कि हम सनातन जैन साधु अपने आप तीर्थ नहीं बन बैठे हैं किन्तु तीर्थंकर कृत तीर्थ में उपस्थित हैं

और रे मंगल ढूंढी, न हम ने अपना कोई धाम मनाया है, कारण कि सु साधु तो अनगार होते हैं वह तो कोई धाम अपना रखते ही नहीं

रे विचार विकल ढूंढीओ ! ऐसे तो तुम्हारी हठी हो जा पर मोक्षप्राप्त अनगार तीर्थंकर भगवान का भी धाम मानते हो, धन्य है तुम्हारी दुर्बुद्धि को रे दुर्मती ढूंढी, हम तो किसी के भी कल्पितधर्मों को तथा समाधियों का नहीं मानते हैं और न मनाते हैं ??

तेरह में छल छंद के तीसेर चरण मे रे विवेक विकल दंडी तू ने श्रमणोपाशकों के ऊपर आक्षेप किया है कि

वांदे पूजे माने मानता सेवक के मनभाया है

उत्तरः-रे मंगल दंडी, तेरा यह आक्षेप भी नितात मिथ्या है; क्योंकि हमारे सुश्रावक किसी के भी कल्पित चरणो को तथा समाधियों को आत्म कल्याणार्थ नहीं वांदते पूजते हैं, और जो लुधियाने आदि में समाधि स्थापित की हैं सो लौकिक मान वड़ाई के लिये करी प्रतीत होती है उन्हे सुशोभित देखकर तू क्यो झुलसता और ईर्षा करता है ?

तथा जो कोई भद्रक जीव मानता मानते होंगे सो भी लौकिक कार्य्यों की ही सिद्धि के लिये मानते होगे, जैसे सम्यक्त्वी चक्रवर्त्यादिक चक्ररत्नादिक की मान्यता करते हैं, परंतु हमारे दृढ श्रद्धालु श्रावक किसी भी अविरतदेव की सेव लोकोत्तर-कार्य्य की सिद्धि के अर्थ नहीं करते, और जो तूने सत्तप शम दम संयमाद्यलंकृत महामुनि तपस्वी जी श्री लालचंद जी की जाति का नाम लिख कर प्रकट किया है सो तो तू ने एकात द्वेप पोषण ही किया है, रे दुर्भागी दंडी तू तो आत्माराम के कल्पित चरण तथा समाधि को उभय लोकार्थे वंदता पूजता है तथा तेरे वहुत से सधर्म्मी मानता भी मानते हैं, परंतु उस दंडी आत्माराम (आनंद विजय) को "उत्पत्ति लक्षण" नामक ग्रथ की पृष्ठ ३ री में स्पष्ट तथा वर्ण·· र (वु···स) सिद्ध किया है, उक्त ग्रंथ में लिखा है कि दडी आत्माराम (आनंद विजय) की माता रूपाँ नाम की तरखाना अर्थात् वढइन थी जब उस का पति मर गया तब वह गणेशसिंह नामक क्षत्री के

शत्रुंजयादिक को किसी भी जिन प्रणीत सूत्रों में तीर्थ रूप
मानेने का वर्णन लेश मात्र भी कहीं नहीं है

क्यों कि एक कवि ने भी शत्रुंजयादिक स्थावर तीर्थों को
अप्रमाण अर्वाचीन काल के वर्णन किये हैं, यथा मजन—पावन
तीरथ संसार में ॥ आधुनिक नजर आते हैं ॥

॥ अंतरा ॥ जिस कर तिरे तीर्थ है सोई,
देखो शब्द-अर्थ को जोई ।
सो ही शक्ति न दीसे कोई,
सरिता और पहार में ॥
फिर कुगुरु भरमाते हैं ॥ आधुनिक नजर आते हैं ॥ १ ॥
जंगम तीरथ को नहि ध्यामें,
कल्पित जड़ तीर्थों पर जामें ।
धाम काम तज पाप कमामें,
जो भवदधि की धार में ॥
गहिरे गोते खाते हैं ॥ आधुनिक नजर आते हैं ॥ २ ॥
विक्रम संवत्सर सुँम मांई,
एक सहिंस पैंतालिस मांई ।
शत्रुंजय पर नींम लगाई,
मंदिर बहु विस्तार में ॥
बनवाया बतलाते हैं ॥ आधुनिक नजर आते हैं ॥ ३ ॥
देखो जिन भाषित आगम को,
तजदो मिथ्या शास्त्र भरम को ।
धारो हिरदे दया धरम को

पड़ौ मति जंजार में ॥
हित धर कर समुझाते हैं ॥ आधुनिक नजर आते हैं ॥ ४ ॥
बारै सय छ्यासठ हायन में,
विकट पहाड़ देख कानन में ।
बनवाये पगल्या पाहन मे ,
तब से गढ गिरनार में
तीरथ करने जाते हैं ॥ आधुनिक नजर आते हैं ॥ ५ ॥
बारै सय पिच्यासी वत्सर,
बनवाया मंदिर आबू पर
तेजपाल अरु वस्तुपाल नर,
हिंसा धर्म्म प्रचार में ॥
दोउ बढिया कहिवाते हैं ॥ आधुनिक नजर आते हैं ॥ ६ ॥
विक्रमार्क सोलै सय जानों,
ऊपर बरष पचीश बखानों ।
तबसे शिखर तीर्थ प्रकटानों,
देखो शिखर मझार में ॥
यह शिला लेख पाते हैं ॥ आधुनिक नजर आते हैं ॥ ७ ॥
कर अनुमान शिखर गिर जाई,
बेहद अटवी को कटवाई ।
बीश टोंक जग सेठ बनाई,
मूढ़ अधर्म्म दुवार में ॥
धनव्यय कर हरपाते हैं ॥ आधुनिक नजर आतेहैं ॥ ८ ॥
अचरज विज्ञ बनें जड सेवें ।
जड की भक्ति मुक्ति किम देवें ?

पद तो पाठक हूं स्वकि केवे,

अभी बुद्धि विचार में ॥

हम सब गुरु भैयाते हैं ॥ आधुनिक नजर आवे हैं ॥ ९ ॥

यद्यपि यह भजन तुम्हारे मान्य मर्तों के प्रमाणों से सुसो मित नहीं है तथापि हम इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि उक्त भजन में गिरिनारि आदि तीर्थोत्पत्ति के जो २ कवि ने संवत् दिये हैं सो कराव २ सत्य ही हैं क्यों कि वहां के शिला लेखों में पद में कहे हुए संवत् से प्राचीन संवत् नहीं लिखे हैं ऐसा हम ने भी अनेक प्रामाणिक यात्रियों से निश्चय किया है, अतएव पू मित स्थावर तीर्थ सर्व अर्वाचीन काल के ही हैं ? ?

तेरहमें छंद के दूसरे चरण में रे मगल हूं लिखवाहे

अपने आप तीर्थ बन बैठे अपना धाम मनाया है

उत्तर:—ढंढी, यह लेख तेरे अविवेकीपने का है, क्यों कि हम सनातन जैन साधु अपन आप तार्थ नहीं बन बैठे हैं किंतु तीर्थंकर कृत तीर्थ में उपस्थित हैं

और रे मंगल ढंढो, न हम ने अपना कोई धाम मनाया है, कारण कि मुसाधु तो अनगार होवे हैं वह तो कोई धाम अपना रखते ही न ीं

रे विचार विकल ढंढीमी ! ऐसे तो तुम्ही हटी हो जो पर मोत्कृष्ट अनगार तीर्थंकर भगवान का भी धाम मानते हो, धन्य है तुम्हारी दुर्बुद्धि को; रे दुर्मती ढंढी, हम तो किसी के भी कल्पितधर्मों को तथा समाधियों को नहीं मानते हैं और न मनाते हैं ? ?

तेरह मे छल छंद के तीसेर चरण मे रे विवेक विकल दंडी तू ने श्रमणोपाशकों के ऊपर आक्षेप किया है कि

वांदे पूजे माने मानता सेवक के मनभाया है

उत्तरः-रे मंगल दंडी, तेरा यह आक्षेप भी नितात मिथ्या है, क्योंकि हमारे सुश्रावक किसी के भी कल्पित चरणो को तथा समाधियों को आत्म कल्याणार्थं नहीं वांदते पूजते हैं, और जो लुधियाने आदि में समाधि स्थापित की हैं सो लौकिक मान वड़ाई के लिये करी प्रतीत होती है उन्हे सुशोभित देखकर तू क्यो झुलसता और ईर्षा करता है ?

तथा जो कोई भद्रक जीव मानता मानते होंगे सो भी लौकिक कार्य्यों की ही सिद्धि के लिये मानते होंगे, जैसे सम्यक्त्वी चक्रवर्त्यादिक चक्ररत्नादिक की मान्यता करते हैं, परंतु हमारे दृढ श्रद्धालु श्रावक किसी भी अविरतदेव की सेव लोकोत्तर-कार्य्य की सिद्धि के अर्थ नहीं करते, और जो तूने सत्तप शम दम सयमाद्यलंकृत महामुनि तपस्वी जी श्री लालचंद जी की जाति का नाम लिख कर प्रकट किया है सो तो तू ने एकात द्वेष पोषण ही किया है, रे दुर्भागी दंडी तू तो आत्माराम के कल्पित चरण तथा समाधि को उभय लोकार्थे वंदता पूजता है तथा तेरे बहुत से सधर्म्मी मानता भी मानते हैं, परतु उस दंडी आत्माराम (आनंद विजय) को "उत्पत्ति लक्षण" नामक ग्रंथ की पृष्ठ ३ री में स्पष्ट तथा वर्ण···र (वु···स) सिद्ध किया है, उक्त ग्रंथ में लिखा है कि दंडी आत्माराम (आनंद विजय) की माता रूपाँ नाम की तरखाना अर्थात् वढइन थी जव उस का पति मर गया तव वह गणेशसिंह नामक क्षत्री के

घर में रहने लगी उस से ढूंढी आत्माराम जी अर्थात् आनंद विजय जी का देह निर्म्माण हुआ इन के माता पितादिकों ने इनका नामविजा रखा था, तो कहिये ढूंढी जी उपर्युक्त ग्रंथके लेखानुसार तुमारे पूज्य गुरु ढूंढी आनंदविजयजी वर्ण 'र (शु 'स) थे, या नहीं ?

और रे मंगल ढूंढी, यदि तुम्हारे पूज्य गुरु ढूंढी आत्माराम (आनंद विजय) जी वर्ण र [शु स] थे तो शु 'स (वर्ण 'र) हो तो जिनागमों में अंत्यज [चां 'ड] आदि से भी विशेष नीच कहा है तथो चंडाल पुक्कसो इति आगम वचनात् ऐसे को प्रतिकृतियें बनवाके तुम पक्षपाती ढूंढी कल्पित तीर्थंकरों के निकट स्थापन कर बंदते पूजते हो जिस को तुम्हारे ही ढूंढी धनविजय ने "चतुर्थ स्तुति निर्णय शंको द्वार" ग्रंथ के अनेक स्थलों में "उत्सूत्र भाषी अनंत संसारी-दीर्घ संसारी-भांड जैसे स्वांग का धारी मृषावादी" आदि सिद्ध किया है, तथा उस को तुम ढूंढीओं को यह भी निश्चय खबर नहीं है कि वह कौनसी गति को प्राप्त हुआ है ।

पुनारे विवेक विकलढूंढीओ, तुम्हारे बड़े २ प्रशंसापात्र हेमचंद्र हीरविजय आदि हुए हो गये बतलाते हो और जिन्होंने अनेक राजा वा पातशाहों को दया पालने का सदुपदेश दे दे के दया भगवती की आराधना करी बतलाते हो उन की तो प्रायः तुम्हारे कोई भी पूर्वजों ने प्रतिमा बनवा के कल्पित तीर्थ करों के समीप स्थापन कर उन की वंदना पूजना नहीं करी प्रतीत होती तो क्योंरे ढूंढी उन हेमचंद्रादिकों से भी यह ढूंढी आत्माराम (आनंद विजय) जिस को वर्णं सं' 'र लिखा है,

अधिक भाग्यशाली था जो उसकी प्रतिमा को तू वंदता पूजता है ?

रे दंडी तुझे लज्जा भी नहीं प्राप्त होती है ?

रे दँभी दंडी चउदहमें छल छद्र मे तूने लिखा है कि

यथ्था-थोड़ी मान वडाई खातर क्यों ललचाया है, मान के कारण ज्ञान भुला कर परमारथ उलटाया है, सूत्र अर्थ का भेद न जाना पंडितराज कहाया है ॥

उत्तर.रे बुद्धिहीन मंगलदंडी यह लेख लिख कर तो तूँने केवल त्रिंशिका की ही पूर्त्ति करी है अतएव ऐसे २ निस्सार लेखों के उत्तर लिखने में हम अपने अमूल्य समय को व्यर्थ व्यतीत नहीं करना चाहते हा, इतना लिखना तो आवश्यक समझते हैं कि तूँने ही थोडोसी मान वड़ाई के लिये अवश्य मन ललचाया है, अन्यथा कुकवि दंडी वल्लभ की बनाई "द्वात्रिंशिका" दंडी अमर कृत "नेत्र-धूलि" ग्रंथ में छपी हुई है उस में से कुछ २ शब्दादि परिवर्त्तन कर और अपने नाम से "त्रिंशिका" प्रकट करवाय कर उस कुकवि का पूत तूँ क्यों बनता ?

रे मंगल दडी, क्या तुझ को यह मालूम नहीं है कि जो किसी दूसरे कवि की कविता में से कुछ २ शब्दादि परिवर्त्तन कर अपने नाम से प्रकट करता है, वह उस असली कवि का पूत होता है, रे दंडी, क्या तू इतना भी नहीं जानता है कि

एक कविन की इस्तिरी, एक कविन के पूत । एक कवि है कविन में, एक कवि अवधूत ? ॥ १ ॥

और तुम ढूंढी ही मान के कारण ज्ञान भुला कर परमार्थ को उलटा रहे हो क्योंकि यह बात तुम्हारे ही ढूंढी मत विषय में "चतुर्थ स्तुति निर्णय शंकोद्धार" ग्रंथ के अनेक स्थलों में सिद्ध करी है,

और रे बुद्धि हीन मंगल्ल, जिस में पंडितपना का गुण होगा वह ही पंडितराज हो सकता है, केवल ढोंग बनाने से, वा ढकोसले बाजी से ही यदि पंडितराज होने लगते तो तू ही अपने को पंडितराज न कहा लेता, किसी कवि ने भी सत्य कहा है कि ऊँचे बैठें नाहरें, गुण बिन बड़पन कोय। बैठो दवल शिखर पर, वायस गरुड़ न होय ॥ १ ॥

तो रे मगल ! तू गुणयुक्त पंडितराजों के सुयश को श्रवण कर यों कहि र कर क्यों ? व्यर्थ कर्म्मबंधन करता है कि सूत्र अर्थ का भेद न जाना पंडितराज कहाया है,

रे मृषा वादी ढूंढी, ऐसे २ पंडितराजों से ईर्षा करने से तू पंडितराज नहीं कहला सकता हां यह तो है कि ज्ञानावर णीय कर्म्मका बंधन तो अवश्य हो सकता है अस्तु ??

प्रथम छन्द छंद में ढूंढी नें यह लिखा है कि

दश–वैका दशवैकालिक प्रश्न व्याकरण गाया है । आचारांग निशीथ भगवई आदि पाठ पढ़ाया है। जिनके हिरदे की गई फूटी सन को नजर नहीं आया है ॥

उत्तर-रे ढूंढी तेरा यह लिखना तो असमंजस है, क्यों कि दशवैकालिक, प्रश्नव्याकरण, आचारांग-निशीथ-और भगवती आदि किसी भी जिन प्रणीत सिद्धांत में आचाल वृद्ध साधुओं

को दीक्षित हों तभी से नियमित सदैव आकर्णांत दंड धारण करने की जिनाज्ञा नहीं है, दंडी जी दशवैकालिक सूत्र के "षट्-जीवनिकाय" नामक चतुर्थाध्ययन में तो त्रस जीवों का यत्नाचार विधान करते हुये भगवान ने यह फरमाया है कि हस्तादिकों के उपरि कीटादि त्रस जीव चढि जायँ तो साधु उन जीवों की यत्नाचार पूर्वक प्रतिलेखना प्रमार्जना करे, परंतु ऐसा तो दशवैकालिक सूत्र में कहीं भी नहीं कहा है कि सर्व साधुओं को दंड अवश्य रखना ही चाहिये, अव दंडी जी आप की संतुष्टि के लिये "दशवैकालिक" सूत्र का पाठ लिख दिखाते हैं,

से भिक्खूवा भिक्खूणी वा संजमविरयपडिहयपच्चक्खाय पावकम्मे दियावा राओवा एगओवा परिसागओ वा सुत्तेवा जागरमाणे वा सेकीडं वा पयगवा कुंथुं वा पिवीलियंवा हत्थ सि वा पाउं सिवा वाहुं सिवा उरुं सिवा उदर सिवा सीसं सिवा वत्थं सिवा पडिग्गह सिवा कंवलं सिवा पाय पुच्छण सिवा रयहरणं सिवा उडुगं सिवा दंडगं सिवा पीढग सिवा फलगं सिवा सेज्ज सिवा संथारंग सिवा अण्णयरं सिवा तहप्पगारे उवगरण जाए तओ सजया मेव पडिलेहिय पडिले हिय पमज्जिय पमज्जिय एगंत मवणेज्जा नो ण **संघाय मावजेज्जा** ॥ ६ ॥

इस का भावार्थ यह है कि, साधु अथवा साध्वी सयमवान व्रती ? हन दिये हैं प्रत्याख्यान कर के पाप कर्म जिस ने, वो व्रती ? दिन में अथवा रात्रि में एकलेपने में तथा परिपद में, बैठे हुवे में वा सोते हुवे में और जागतेपने में, कीट द्वीन्द्रिय जीव पतंग चतुरद्रिय जीव विशेप, कुँथुव, पिपीलिका, तीन

इन्द्रिय वाले जीव हाथ के विषें, पग के विषें, बाहु के विषें, उरु साथल के विषें, उदर (पेट) पर, मस्तक पर, वस्त्र के विषें पात्र के विषें कंबल पर पाद पुंछन पर, रजोहरण (ओघा) के विषें, गोच्छा प्रमार्जनी के विषें, कंडे के विषें दंड के उपर पीठ चौकी के उपर फलक (पट्टे) के ऊमर सय्या के विषें संस्तारक (त्रण प्रमुख) के विषें इन से भिन्न और भी आ तथा प्रकार के उपकरण होंय उनके विषें चढ़े होंय सो तिन हस्तादिक पर से यन कीटादि जीवों की यथाधार पूर्वक निश्चय प्रतिलेखना कर के प्रमार्जना करे प्रमार्जना करके कढ कीटादि त्रस जीवों को एकांत उतारे परंतु इस विध से उतारे कि उन जीवों का संघात न होवे

अब कहिये मंगल दंडी जी इस "दशवैकालिक" सूत्र के पाठ में जैसे तुम यही दंड रखना बतलाते हो वैसे स्थावर कल्पी सर्व साधारण साधु, साध्वीयों को नियमित सदैव दंड रखना कहां कहा है ? रे मंगल दंडी तैने दशवैकालिक सूत्र पढा भी है, या, निरक्षर भट्टाचार्य्य ही है !

यदि तुम दंडी, "दंडगं सिवा" इतने पद मात्र से ही सदा दंड रखने की मनघडाया बतलाते हो तो जैसे तुम बसति [स्थान] से बाहर जाते समय दंड को रजोहरण की तरह साथ रखते हो वैसे ही पीठ फलक को भी साथ रखना चाहिये, तथा र मंगल दंडी, तूं अपने गुरुओं की पीठ के पीछे [बसति से बाहर जोयें तब] एक तृण के पुंज को भी बांध ले चलने की अरज करदे जिस से वह बिल्कुल तुम्हारा दीदा करें ? क्याकि दशवैकालिक सूत्र में तो "दंडगं सिवा" इस पाठ

के आगे "पीढग सिवा" फलगं सिवा, सेज्ज सिवा–सथारगं सिवा इत्यादि यह पाठ भी भगवंतों ने वर्णन किया है, अतएव पीठादिक भी सदैव पास रखने ही चाहिये ?

रे मगल दंडी, "दंडगं सिवा" इस पाठ का तो यहा यह परमार्थ है कि, कोई स्थविर मुनि ने कारण वश दंड रक्खा हो तो उसकी भी प्रतिलेखना प्रमार्जना करै, परंतु इस पाठ का यह परमार्थ नहीं है कि दीक्षित होंय तभी से सर्वसाधुओ को अवश्य दड रखना चाहिये.

तथा रे मंगल दंडी, प्रश्नव्याकरण सूत्र का प्रमाण भी तूंने मिथ्या लिखा है, क्यो कि प्रश्न व्याकरण सूत्र के मूल पाठ मे कहीं भी स्थविरकल्पी साधुओं को दंड रखने की भगवदाज्ञा नहीं लिखी है, यदि कहीं लिखी है तो मूल पाठ का प्रमाण प्रकट कर अन्यथा तूँ उत्सूत्र भापी समझा जायगा, रे मगल दंडी, प्रश्नव्याकरण सूत्र के पंचम सवर द्वार में स्थविर कल्पी सर्व साधारण साधुओं को संयम निर्वाह के अर्थ पडिग्गह आदि चउदह उपकरण रखने भगवंत ने वर्णन किये हैं, परंतु उन में दंड का तो नाम भी नहीं है, अतएव यह स्पष्ट सिद्ध है कि निःकारण दड रखना जिनाज्ञा से बाहिर हैं, यदि सर्व साधु-ओको दडी रखने की जिनाज्ञा होती तो चउदह उपकरणों में दड का नाम भी अवश्य होता और चउदह उपकरण नहीं किंतु पद्रह उपकरण गिनाते, यदि दंडी जी इस दंड का रखना "आदि" शब्द में ग्रहण करेंगें तो तिन के पूर्वज टीकाकार इस "आदि" शब्द की व्याख्या में स्पष्ट लिख देते, परंतु उन्होने "आदि" शब्द की व्याख्या में दंड रखना नही लिखा है,

देखा ढूंढी जी तुम्हारे ही मतानुयायी मकसूदाबाद निवासी राय धनपतसिंह बहादुर के छपाये हुए " प्रश्न व्याकरण " सूत्र की पृष्ठ ५०१ की पंक्ति १ म " आदि" शब्द की व्याख्या इस प्रकार लिखी है कि

तत एतान्यादिर्यस्य तत्तथा, अब ढूंढी जी का विचारना चाहिये कि "आदि" शब्द की व्याख्या में भी टीकाकारों ने दंड का रखना नहीं लिखा है तो फिर प्रश्नव्याकरण सूत्र का मिथ्या प्रमाण देकर क्यों भव्य जीवों को बहकाया जाता है ?

तथा ढूंढी जी ने "आचारांग निशीथ, और भगवती" जी का जो प्रमाण दिया है सो भी असमंजस ही है, क्योंकि "आचारांग निशीथ और भगवती जी" में ऐसा कहीं भी नहीं लिखा है कि, सर्व साधु तथा साध्वीओं को सदैव दंड रखना, अतएव यह प्रतीत होता है कि, मंगलर्षी जी ने ऐसे झूठे २ प्रमाण केवल भव्य जीवोंको अपने दंभ रूप फंद में फंसाने के अभिप्रायसे ही लिखे हैं, और जो भगवती जी सूत्र के अष्टम शतक के षष्ठमोद्देश में "लट्ठी" ऐसा शब्द आता है सो यथेष्ट, परंतु उस पाठ का यह परमार्थ नहीं है कि, सर्व साधु, साध्वीओं को सदैव दंड रखना, उस पाठ का तो यह परमार्थ गुरुगम्य से धारण किया है कि, जो साधु स्थविरभूमि को प्राप्त हुए होंय और कारण वश " लट्ठी " अर्थात् दंड रखना होवे तो शास्त्र की कही हुई विधि से " लट्ठी " अर्थात् दंड ग्रहण करना, और हिरदे की तो ढूंढी जी की ही फूट गई प्रतीत होती है कि जो इसको सिद्धांतों के सत्य अर्थ नहीं भासते हैं, पुनः ढूंढी जी इसी पंदरहमें छप्प छंद के नोट में लिखते हैं कि यदि ढुंढियों का

यही निश्चय है कि साधु दंडा लाठी नहीं रखे तो कई ढुंढिये ढुढर्नीयां दंडा लाठी लिये फिरते हैं सो क्या बात है? यदि कहो कि बूढा रखे तो वह पाठ दिखाना चाहिये कि इतने वर्ष का होवे तब दंडा लाठी लेवे अन्यथा तुम्हारे गपौडे को तुम्हारे सरीखा गपौडी ही मानेगा प्रेक्षावान तो कोई भी नही **मानेगा**

दंडी जी का यह लेख अनभिज्ञपने का है, यदि यह जिनागमों के जानकर होते तो ऐसा प्रश्न कदापि न करते, क्योंकि जो साधु स्थविर भूमि को प्राप्त हुआ होवे उस स्थविर साधु को तो दंड तथा यष्टिका रखनी कल्पे यह जिनाज्ञा "व्यवहार" सूत्र के अष्टमोद्दश के पचम सूत्र में प्रकट कहा है, यथाः—

थेराणं थेरभूमिपत्ताणं कप्पइ -दंड एवा-भंड एवा-छत्तंवा-पत्तएवा-लट्ठिया एवा,

इस का भावार्थ यह है कि, स्थविर जो जरा कर के जीर्ण अर्थात् स्थविर भूमि को प्राप्त हुए होय उन स्थविर साधु तथा साध्वी जी को कल्पता हैः-दड नाम कान प्रमाण का एक काष्ठ का उपकरण-भंड सो उपकरण विशेष, छत्र सो मस्तक से पछेवडी का ओढना, पात्र सो उच्चारादि के परिष्ठापन करने को और यष्टिका छाती प्रमाण की लंबी रखनी, अब दंडी जी को सोचना चाहिये कि स्थविर साधु साध्वीओ को दंड तथा यष्टिका का रखना इस "व्यवहार" सूत्रके कथनानुसार कल्पता है, या नहीं ? और क्या गप्पी मगल दंडी जी इस"व्यवहार" सूत्र के प्रमाण को भी गपोड़ा ही मानेंगे ? और यदि सर्व साधुओं को ही दड रखना कल्पता हो तो इस "व्यवहार" सूत्र में गणधर महाराज यह पाठ क्यों फरमाते ? कि ["थेराणं थेरभूमि

पत्ताण कप्पइ:-दंड एवा"] किंतु यह पाठ कहते कि, [निगथार्ण निग्गंथीर्ण कप्पइ:-दंडयत्ता परंतु ऐसा पाठ तो नहीं कहा है अत-एव यह स्पष्ट सिद्ध है, कि स्थविरों को ही दंड रखना कल्पै अन्य सामान्य साधुओं को निष्कारण दंड रखने की जिनाज्ञा नहीं है, और जो "भगवती" जी सूत्र के अष्टम शतक के पष्ठमोद्देश में"लट्ठी"का पाठ आया है सो भी स्थविरों के ही प्रति हैं, अन्य सामान्य साधुओं के प्रति नहीं: क्यों कि "व्यवहार" सूत्र के उपर्युक्त प्रमाणानुसार "छड़ी" रखने की भी जिनाज्ञा स्थविरा को ही है, अन्य सामान्य साधुओं को नहीं है, और इस विषय में ढूंढी जी ने वर्षों का प्रमाण पूछा है सो तो अपनी अज्ञानता प्रकट करी है क्योंकि जिनागमों के विषे जो विधि वाद का कथन है सो प्रायः त्रिकालविषयिक है जैसे कि जिस समय में पूर्वों की आयु थी तब भी स्थविर होवे थे और अब यदि शतायु है तो स्थविर अब भी होवे हैं, अतएव शास्त्रों में"स्थविरों को दंड रखना कल्पै"यह लिख दिया है तो जिस समय में जितना वय वाले को स्थविर भूमि प्राप्त होवे उस समय में उतनी ही वय वाले को स्थविर जानना, इसमें वर्षों का प्रमाण पूछना, यदि अज्ञानता नहीं है तो क्या है ? क्योंकि स्थविर इस शब्द का स्पष्ट अर्थ हुआ हो है देखो "पाद्मचंद्र कोश" की पृष्ठ ४३७ की पंक्ति १९ मी

स्थविर, [म०]‥‥ "वृद्ध" ‥‥‥पुनः क्या मन्मंद ढूंढी जी इतना भी नहीं जानते हैं कि, वर्तमान काल में कितनी वय वाले को "स्थविर" अर्थात् बूढ़ा कहते हैं; जो वर्षों के प्रमाण पूछने की कुतर्क करी है ? परंतु अब इस कुतर्क का भी सिद्धान्तोक्त उत्तर लिखा जाता है,

देखो, मगल दंडी सरीखे वक्र जडों के भ्रम को विध्वंस करने के लिये श्री "स्थानाग" जी सूत्रके तृतीय स्थान मे "स्थविर भूमि प्राप्त स्थविरो के वर्षों का प्रमाण भी गणधर महाराज ने स्पष्टतया वर्णन कर दिया है,"

तओ थेर भूमीओ पण्णंता तंजहाः-जाइ थेरे-सुय थेरे परियाय थेरे, सट्ठिवास जायए समणे निग्गंथे जाइ थेरे समवाय धरेण समणे निग्गथे सुय थेरे वीस वास परिया एणं समणे निग्गंथे परियाय थेरे; इस का भावार्थ यह है कि तीन स्थविर भूमि प्ररूपण की हैं अर्थात् स्थविर नाम जो वृद्ध हैं उन की अवस्था की मर्यादा तीन तरह से वर्णन की है, सो इस तरह से हैं कि, जन्म से १ सूत्र से २ और पर्य्याय से ३ पुनः गणधर महाराज इन का स्पष्टीकरण करते ह कि, जो जन्म दिवस से साठि वर्षकी अवस्था को प्राप्त हो जाय वह श्रमण निर्ग्रंथ 'जाति स्थविर' कहा है १ जो 'स्थानाग' 'समवायाग' को पढ ले वह श्रमण निर्ग्रंथ 'श्रुत स्थविर' कहा है २. और जो वीस वर्षका दीक्षित हो जावे उसको "पर्य्याय स्थविर" कहा है ॥ ३ ॥

अव कहिये मगल दडी जी, "वृद्धा रखे तो वो पाठ दिखाना चाहिये कि इतने वर्ष का होवे तव दंडा लाठी लेवे" इस तुम्हारे प्रश्न का ठीक २ उत्तर हो गया या अव भी कछ कसर ही रही ?

पुनःविचार शून्य दडी जी ! जिनोक्त सिद्धातों को प्रमाण मानकर तनिक तो विचार करो कि, युवावस्था वाले निरोग साधुओं को निष्कारण कान तक लंवे दड रखने की क्या आवश्यकता है ? किंतु विना कारण तो दंड रखना केवल

परिग्रह ही होता है, और लौकिक में भी निष्कारण दंड वह ही मनुष्य रखते हैं कि जो क्रोधी तथा भयाकुल होते हैं, और सनातन जैन साधु हैं सो तो उपशान्त चित्त वत सप्त भयों कर रहित होते हैं, अतएव सुसाधु तो निष्कारण दंड नहीं रखते, और यदि साधु नाम धरा कर भी निष्कारण दंड रक्खे वह साधु नहीं किन्तु सशस्त्र होने से क्रोध मूर्त्ति है, क्योंकि ढूंढी जी दंड भी एक प्रकार का हथियार ही है, और द्विपदादि जीवों को भय उपजाने का कारण है; मंगल ढूंढी जी आश्चर्य तो यह है कि, तुम्हारे ही पूर्वजों ने दंड को हथियार माना है और स्पष्टतया लिखा भी है तथापि तुम्हारे जैसा नेत्रांध और कौन होगा कि, जो तुम्हें वह लेख दिखते ही नहीं, अस्तु देखो मंगल ढूंढी जी तुम्हारे ही मान्य ग्रन्थ "प्रकरण रत्नाकर" के तीसरे भाग की पृष्ठ २६२ पंक्ति १७ के लेख को "मूल" पब वद्धम्मि व दंडो, विसंडओ चिप्प एव वरिसयाले, अंसो खुभो निम्मई कप्पं तरिय भो जस भएणं" ॥ ६८० ॥

इस का अर्थ यह लिखा है कि,

अर्थः वद वर्ष के० ऋतु बद्ध काल एटले चौमासा विना आठ मास काल्मां भिक्षा वेलाये द्विपद मनुष्यादि जे म्लेच्छ होयते अने चतुष्पद गाय घोड़ादिक तथा पशु एन सरभादिक तेना निवारण ने अर्थे तथा विहार करतां अन्यवीमां व्याघ्र चोराधिक नो भय निवारणने अर्थे दांडो हथीयार छे माटे दांडो लेवोः पुनःमंगल ढूंढी जी इसी बात को पुष्ट करने के लिये तुम्हारे ही मान्य ढूंढी अमरसिंह जी स्वरचित "रत्नावली" ग्रंथ की पृष्ठ १९३ की पंक्ति ५ मी से लिखत हैं कि

केशरीया वाना पीताम्बर कंबली काठ के लोटा डांडा राखें पशू डरा में जिहां देखा जिहां टोटा इत्यादि तुम्हारे ही अनेक ग्रंथों के प्रमाणों से तथा लौकिक व्यवहारो से यह वात स्पष्टसिद्ध है कि, दंड जो है सो 'हथियार' है और पर जीवो को भय उपजाने का कारण है, अतएव सुसाधु निःकारण दंड नहीं रखते, और न कही जिनोक्त सिद्धातों मे सर्व साधुओं को दड रखने की जिनाज्ञा है, यदि मंगलदंडी जी, आप कुछ पाडित्य का गर्व्व रखते हो तो जिनोक्त वर्त्तीश सिद्धातो का वह पाठ लिख कर क्यों नही प्रकट करते कि, जिस में यह लिखा होवे कि, दीक्षित होंय तव ही से सर्व साधुओं को निःकारण दड रखना, यदि न रखे तो अमुक प्रायश्चित्त आवे ??

सोलह में छंद के प्रथम चरण में दंडी जी तुम लिखतेहो कि **घध्धा धर्म जैन नहीं तेरा गुरु नहीं कोई पायाहै ॥**

उत्तरः—मगल दंडी जी तुम्हारा यह लेख नितात मिथ्या है क्योंकि जिनोक्त सिद्धातानुसार श्रुतधर्म्म तथा चारित्रधर्म्म हमने धारण किया है और ऐसे ही हमारे पूर्वजों ने भी धारण किया था, इसलिये हमारा जैनधर्म्म अवश्य है, और हमको सुगुरु भी चारु चारित्र पात्र, निर्म्मल गात्र, तथा रूप के श्रमण प्राप्त हुए हैं; यदि मगल दडी जी आप हमारी गुर्वावली से अपरिचित हैं तो "सिद्ध पाहुड" ग्रथ की स्वाध्याय यत्न पूर्वक आप को एकवार अवश्य करनी चाहिये, ताकि आप हमारी गुर्वावली के भी ज्ञाता हो जाँयँ, और आप को अपने मिथ्यालेख के प्रायश्चित्त करने की भी सद्बुद्धि प्रकट हो जाय

परंतु यह बात अवश्य है कि, जैनाभास ढूंढी जी तुम को ही जैनधर्म की प्राप्ति अवश्य नहीं हुई है, क्यों कि तुम जिनागमों से विरुद्ध हिंसामयी धर्म को मानते हो इसलिये, और न तुम को कोई संयमी गुरु ही मिला है, मगर ढूंढी जी, आप को ही क्या? किंतु आप के परम पूज्य गुरु ढूंढी आनंदविजय जी को ही कोइ संयमी गुरु नहीं मिला? देखो "चतुर्थ स्तुति निर्णय शंकोद्धार" की भूमिका की पृष्ठ २७ पंक्ति २१ मी से आप के ही सहयोगी ढूंढी धनविजय जी स्पष्टतया लिखते हैं कि—

"आत्माराम जी" आनंदविजयजी तो विद्वानपणानो अभिमान धारण करी ढुंढक मतमांथी नीकली ने लुलिंगपणुं धारण कर्युं, पण कोई संयमी गुरु देखा तेमनी पासे उपसंपद अर्थात् नवी दीक्षा लीधी नहीं, अनेते कारणे? तमे श्री बुटेराय जी ना शिष्य थयोते माटे श्री बुटेराय जी पास उपसंपत् ग्रहणकरी कहो छो, ते तो तमे मुरुख भावी ने भोजोबम्ब करी गुन्यनी मुठी भरवानी इच्छा करो छो केम के श्री बुटेराय जी अर्थात् श्री बुद्धिविजय जी तो ढुंढक मतमां थी नीकली ने मुहपत्तीनो चरचा बनावी, ते छपावी ने भावकोद्द वैसावर्तो मां प्रसिद्ध करी, तेमां लखे छे के मेरी सरधातो श्री जसो विजय जी के साथ घणी मिले ह मिम उपाध्याय जी नामसात्र तपेगच्छका कहीलाता था तिम मेरे को भी नाम मात्र तपे गच्छ का कहिलाया जोइए, मने उपाध्याय जी के अनुराग कर के लोकव्यवहार मात्र समाचारी अंगीकार करी राजनगर मध्ये मुनि सौभाग्यविजये तथा मणिविजय पासे गच्छ धारी ने हम

१ तथा मुलचंद २ तथा ब्रद्धिचंद सेठा की धर्मशाला में चले आए, ऐता उन के साथ मेरा संबंध था मैंने कर्म जोरे पांचमा काल में जन्म लिया विराग पिण आव्या, गुरु सजोग न मिल्या ते पाप का उदा इत्यादि बुटेराय जी ना बचन जोता तो श्री बुटेराय जी ए श्री यशोविजय जी उपाध्याय जी ने परोक्ष पणे भावथी गुरु धारण करी लोक व्यवहार मात्र श्री तपा गच्छनी समाचारी अंगीकार करी, पण कोई पासे उपसंपद अर्थात् फरी दिक्षा धारण करी नहीं, पण कदाच कोई कहे शे के श्री सोभागविजयजी तथा मणिविजय जी पासे गच्छ धारण कर्यो तेज उपसंपद ग्रहणकरी समजवी, एम कहेवुं ते पण मिथ्या छे, कारण के सोभाग विजय जी तो जेम श्री रूप विजय जी ए रूपसी पद्मसी ना नामनी हुडियो चलावी तेम सोभागविजय जी पण हुडियो चलावता, तथा एक ठेकाणे रहेता ने कोइ ठेकाणे विहार तो तेमनो मेना विना थतोज नहीं, इत्यादि असंजम प्रवृत्ति श्री गुर्जर, मारवाड देशना सर्व सघ मा प्रसिद्ध छे, तेम कारण विना एक ठेकाणे रहेवानी तथा डोली प्रमुखमा वेसवानी अने परिग्रहादि संचय असजम प्रवृत्ति लोहार (लवार) नी पोलवाला * श्री मणिविजयजीनी पण- हती, तेथीज मुखपत्ति चरचाना ५९ मा पृष्ठमा श्री बुटेराय जी लखे छेके * वाई दिक्षा लेने वाली थी ते साधां की रुप- इये चडाइ ने पूजा करने लगी, प्रथम तो रुपइये चडाइ ने रत्न विजय जी की पूजा करी, फेर मणि विजय जी ने आगे रुपइये चडाइने पूजा करी, पीछे मेरे को रुपइय चडावणे लगी तिवारे नित विजय जी वोल्या महारे आगे रुपइये चडावणे का

---

* पोल वाले ही जो ठहरे !

परंतु यह बात अवश्य है कि, जैनाभास ढूंढी भी तुम का ही जैनधर्म की प्राप्ति अवश्य नहीं हुई है, क्यों कि तुम जिनागमों से विरुद्ध हिंसामयी धर्म को मानते हो इसलिये, और न तुम को कोई संयमी गुरु ही मिला है, मंगल ढूंढी जी, आप को ही क्या ? किंतु आप के परम पूज्य गुरु ढूंढी आनंदविजय जी को ही कोई संयमी गुरु नहीं मिला ! देखो " चतुर्थ स्तुति निर्णय शंकोद्धार " की भूमिका को पृष्ठ २७ पंक्ति २१ मी से आप के ही सहयोगी ढूंढी धनविजय जी स्पष्टतया लिखते हैं कि—

"आत्माराम जी" आनंदविजयजी तो विद्वानपणानो अभिमान धारण करी ढुंढक मतमांथी नीकळी ने शुद्धिपणुं धारण कर्युं, पण कोई संयमी गुरु वेखी तेमनी पासे उपसंपद् अर्थात् नवी दीक्षा लीधी नहीं, अनेवे कार्ये ? तमे श्री बुटेराय जी ना शिष्य थयोवे माटे श्री बुटेराय जी पासे उपसंपद् ग्रहणकरी कहा छो, ते तो तमे पुरुस वाली ने वांजोदम करी सुम्पनी मुठी मरवानी इच्छा करा छो, केम के श्री बुटेराय जी अर्थात् श्री बुद्धिविजय श्री तो ढुंढक मतमां थी नीकळी ने मुहपत्तीनी चरचा चलावी, ते छपावी ने श्रावकोंए देशावरों मां प्रसिद्ध करी, तेमां लख्युं छे के मेरी सरधातो श्री असो विजय जी के साथ घणी मिले है जिस उपाध्याय जी नाममात्र तपेगच्छका कहीलाता था तिम मेरे को भी नाम मात्र तपे गच्छ का कहिलाया जोइए, अने उपाध्याय जी के अनुराग कर के लोकव्यवहार मात्र समाचारी अंगीकार करी गर्यासंमत मध्ये सुमागविजे तथा मणिविजय पासे गच्छ धारी ने हम

जी उपाध्याय जी नी श्रद्धा श्री बुटेराय जी ने जचेली (गमेली) हती, तेथीज श्री बुटेरायजी ए सर्व सम्वेगी नामधारी ने कुगुरु समझी तेमनो लिंगत्यागन करी स्वेत कपडा धारण करी※ अवी जैन सिद्धात के कहे मुजब कोई साधु हमारी देखणे में नहीं आया और हमारे में वी तिस मुजब साधपणा नहीं है तिस्से हम भी साधु नही हैं ※ इत्यादि श्रद्धापूर्वक अंतकाल सुधी श्री अमदावाद मा श्री बुटेराय जी रह्या ने सर्व शेठिया प्रमुख त्या ना संघ मा प्रसिद्ध छे तो हवे विचार करवो जोइए के

आत्माराम जीना गुरु ने संयमी गुरु मल्या नहीं ने तेओ मां संयमी पणुं हतुं नहीं तो आत्मारामा जी मां संयमी पणुं ने संयमी गुरु मल्या एवुं विद्वान सुज्ञ जन तो कोइ कहे नहीं,

पण कदाच अज्ञता ना जोरथी आत्माराम जी आनंदविजय जी ए जेम श्री बुटेराय जी ने गुरु धारण कर्या तेम श्री बुद्धि विजयजीए नामथी संवेगी श्री मणिविजय जी ने गुरु धार्या होय तो पण **जैनमत ना शास्त्रानुसार आत्माराम जी ने साधु मानवा ए वार्त्ता** सिद्ध थती नथी, केमके आत्माराम जी प्रथम तो ढुंढकमतवासी थानकपंथी ढुढिया हता ए वार्त्ता तो सर्व सघ मां प्रसिद्ध छे ने पछी स्वलिंग श्री महावीर स्वामीना यतिनो स्वेत मानो पेत कपडानो छोडी अन्य लिंग पीतांबर अयाति नो ग्रहण कर्यो परंतु कोई संयमी गुरुनी पासे चारित्रोपसंपत अर्थात् फरी ने दिक्षा लीधी नहीं

कुल्ह काम नहीं, हमारे तपस्या की खप नहीं, इम कहीं ने मन कर दीने सिवारे हम सवे यहां ते उठ के चले मावे पीछे विनाने बाइ कु शिक्षा देके सहर में चले गये, ए वाक्या थी स्पष्ट मालूम पडे छे के जो वेहेलावाळा रत्नविजय जी तथा छवारनी पोळवाळा मणिविजय जी परिग्रहनो संचय म होवा रावता तो साधुभक्ति कृत अन्नपूजा ने बुटेराय जी प्रमुख निषेध करत नहीं, पण मणिविजय जी तथा रत्नविजय जी संचय करता हवा तेथी निषेध करी उठी मे चाल्या थया एथी ए पण सूचना थई के श्री बुटेराय जी मणिविजय जी ने संयमी गुरु जाणी ने उपसंपत् ग्रहण करी होत तो पाताना गुरु नी एवी मोटी आशातना करत नहीं, एथी ए निश्चय थयुं के श्री बुटेराय जी ए तो मणिविजय जी ने संयमी गुरु मान्या नहीं, केम के मणिविजय जी प्रमुख तो स्वेत मानों पेथ श्री वीर प्रभु नो स्वेताम्बर जैन लिंग छोडीने पीतांबर अर्थात् पीला कपड़ा धारण करता हवा, अने श्री बुटेरायजी भी मत तो श्री यशोविजय जी उपाध्याय जी श्री मळवो हतो अने श्री यशोवि जय जी उपाध्याय जी ए तो श्री धर्मसताधिकार वचनमां तथा कुमती कपट स्वाध्याय मां तथा उपाध्या जी नी परंपरामां उपस्था श्री उत्तमविजय जी वाचक प्रमुखे श्री हित शिक्षा षट्त्रिंशका मां तथा श्री गच्छाचार विचार बोल पत्रक ग्रंथ मां पीला कपड़ा धारण करनार ने कुलिंगी मिथ्यात्व असंयती कह्या छे ते ग्रंथना पाठ ग्रंथ गौरवना भयथी इहां क्मो लणावता न थी, कोइने जोवा होय तो असमत्कृत श्री स्तुतिनिर्णयविभाकर कोइ शंका निवर्त्तन करवी इहां तो पट्लुंज प्रयोजन छे के श्री यशोविजय

उत्तरः—वाह! दंडी जी यह तो आप ने खूबही बम्बूल वृक्ष के वृन्ताक फल लगाये हैं, अहो! जिनागमों के अनभिज्ञ दंडी! श्री "निशीथ" सूत्र में तो "तीन पसली रंग से साधु को वस्त्र अवश्य रंग ने" ऐसा पाठ कहीं भी नहीं लिखा है, किंतु निशीथ सूत्र के १८ वें उद्देशे में "वस्त्र रंगने वाले साधुको 'चउमासिय' प्रायश्चित आवे ऐसा तो पाठ अवश्य है, यतः ?

जे, भिक्खू णव ए मे वत्थे लद्धे तिकट्टु, लोधेण वा, कक्केण वा, ण्हाणेण वा, पउम चुण्णेण वा, वण्णेण वा, जाव उवट्टंतंवा, साइज्जइ तं सेवमाणे आवज्जेइ चाउमासियं परिहार ट्ठाणं उग्घाइयंः

इस का भावार्थ यह है कि, जो कोई साधु नवीन वस्त्र लेकर, लोध्र, तथा कल्क आदि द्रव्यों से रंगे, अथवा रंगते हुये को भला जाने तो उस को लघुचउमासिय प्रायश्चित्त आवे, और मंगल दंडी जी, इसही वात को पुष्ट करने के लिये, तथा तुम जैसे मूढतमों की कुतर्कों का खंडन करने के लिये, गणधर महाराज श्री "आचारागजी" सूत्र के प्रथम श्रुतस्कंध के विषे वस्त्रों का रंगना तथा रंगीन वस्त्र साधु को पहिरने का स्पष्टतया निषेध करते हैं, देखो मगल दंडी जी तुम्हारे ही मकसूदाबाद निवासी राय धनपतसिंह बहादुर के छपाये हुवे आचाराग जी सूत्र के प्रथम श्रुतस्कध की पृष्ट ३६६ पंक्ति ६ से

अहा, परिग्गहियाइं वत्थाइं धारेज्जा, णो रएज्जा णो धोवेज्जा णो धोतरत्ताइं वत्थाइं धारेज्जा।

अने जेनी पासे दिक्षा ग्रहण करवानुं कहे छे एमना गुरु पोते मुखथी कहेता के मैं संयमी नहीं हुं ॥ इत्यादि" मंगल ढूंढी जी, तुम्हारे धनविजय ढूंढी के उपर्युक्त लेख से यह बात स्पष्ट सिद्ध है कि, तुम्हारे परमपूज्य गुरु ढूंढी आत्माराम जी (आनंद विजय) जी को कोई संयमी गुरु न मिला ? तो ढूंढी जी आप अपने दूपण को व्यर्थ हमारे सिर क्यों लगाते हो !!

सोलहवें छंद के दूसरे और तीसरे चरणमें लिखा है

अपने आप बना जो ढूंढा लवजी आदि कहाया है।
बांधा मुख पर पाटा सत्तरां बीस में पारो गाया है

उत्तर। मंगल ढूंढी जी, लवजी यति ने जो विक्रम संवत् १७२० के लगभग यतियों के कुलिंग को त्याग कर जिनागमा नुसार क्रिया करनी स्वीकार करी और जो अनादि से चला आता है सो साधु वेष भी धारण किया ऐसा अभिप्राय श्रीमती सती पार्वतीजीने "ज्ञानदीपिका" में प्रकट किया है सो तो "इतिहासों" के देखने से सत्य ही प्रतीत होता है, परंतु "अपने आप बना जो ढूंढा लवजी आदि कहाया है" यह तुम्हारा लेख नितान्त मिथ्या है, क्यो कि लवजी मुनि अपने आप पाटे नहीं विराजित हुए थे इसलिये उन महर्षि की पट्टावली 'ज्ञानदीपिका" में जो उक्त सतीजी ने लिखी है यह पढ़ कर तुझे अपना भ्रम दूर करना चाहिये ॥ !!

सत्रहवें उस छंद के पहिले और दूसरे चरण में मंगल ढूंढीजी तुम लिखते हो कि—

नया मये कपड़े को पसली तीन रंग फरमाया है,
सूत्र निशीथ में देख पाठ तैं क्यों इतना घबराया है॥

उत्तरः—वाह! दंडी जी यह तो आप ने खूबही वम्बूल वृक्ष के वृन्ताक फल लगाये हैं, अहो! जिनागमों के अनभिज्ञ दंडी! श्री "निशीथ" सूत्र में तो "तीन पसली रंग से साधु को वस्त्र अवश्य रंग ने" ऐसा पाठ कहीं भी नहीं लिखा है, किंतु निशीथ सूत्र के १८ वें उद्देशे में "वस्त्र रंगने वाले साधुको 'चउमासिय' प्रायश्चित आवे ऐसा तो पाठ अवश्य है, यतः ?

जे, भिक्खू णव ए मे वत्थे लद्धे तिकट्टु, लोधेण वा, कक्केण वा, ण्हाणेण वा, पउम चुण्णेण वा, वण्णेण वा, जाव उवट्टंतंवा, साइज्जइ तं सेवमाणे आवज्जेइ चाउमासियं परिहार ट्ठाणं उग्घाइयंः

इस का भावार्थ यह है कि, जो कोई साधु नवीन वस्त्र लेकर, लोध्र, तथा कल्क आदि द्रव्यों से रंगे, अथवा रंगते हुये को भला जाने तो उस को लघुचउमासिय प्रायश्चित्त आवे, और मंगल दंडी जी, इसही बात को पुष्ट करने के लिये, तथा तुम जैसे मूढतमों की कुतर्कों का खंडन करने के लिये, गणधर महाराज श्री "आचारागजी" सूत्र के प्रथम श्रुतस्कध के विषे वस्त्रों का रंगना तथा रंगीन वस्त्र साधु को पहिरने का स्पष्टतया निषेध करते हैं, देखो मंगल दंडी जी तुम्हारे ही मकसूदावाद निवासी राय धनपतसिंह वहादुर के छपाये हुवे आचाराग जी सूत्र के प्रथम श्रुतस्कध की पृष्ठ ३६६ पंक्ति ६ से

अहा, परिग्गहियाइं वत्थाइं धारेज्जा, णो रएज्जा णो धोवेज्जा णो धोतरत्ताइं वत्थाइं धारेज्जा।

पुनः देखो उक्त भुवरकम की पृष्ठ २६५ की पंक्ति १६ से दीपिका टीका इसी पाठ की:—

यथा परिगृहीतानि धारयेत् न तस्रोत्कर्षणधावनादिकं परिकर्म कुर्यादित्याह णो धावयेत् प्रासुकोदकेनापि प्रक्षालयेत् गच्छवासि मोहि अप्राप्तवर्षादो म्लानावस्थायां वा प्रासुकोदकेन यतनया धावनमनुज्ञातं न तु जिनकल्पिकस्य नो धोव रत्ता इन्ति न च धौतरक्तानि वस्त्राणि धारयेत् पूर्वं धौतानि पश्चाद्रक्तानि

अब कहिये ढूंढी जी, आप का वह तीन पसली रंग कहाँ उड़ गया ॥ तथा "उत्तराध्ययन" जी सूत्र के तेवीसवें अध्ययन में वीर शासनानुयायी साधुओं के श्वेत वस्त्र कहे हैं, परंतु पीतादिक रंगीन वस्त्र पहिनने नहीं कहे तथा विवेक विकल ढूंढी जी, तुम्हारे ही मान्य गच्छाचारपयन्ना प्रमुख में भी पीतादिक रंगीन वस्त्र पहिरने वाले साधु, साध्वीओं को गच्छकी मर्यादा से बाहिर कहे हैं।

देखो मंगल ढूंढी जी, उक्त वार्ता को तुम्हारे ही सहयोगी ढूंढी मनविजय जी "चतुर्वस्तुविनिर्णयपत्रकोद्धार" की पृष्ठ ८१ की पंक्ति ८ मी से लिखते हैं कि श्री गच्छाचार पयन्ना प्रमुख मां भी वीरशासनमां श्वेत मानो पेत वस्त्र नो त्याग करी, पीतादिक वस्त्रने रंगेला वस्त्र धारण करे तेने गच्छ मर्यादा बाहिर कह्या छे ॥

॥ ते पाठ गाथा ॥ जत्थय वारडियाण तत्तडियाणं च तहय परिभोगो मुत्तुं सुक्किल वत्थं कामेरा तत्थ गच्छंमि ॥ ८९ ॥

॥ टीका ॥ तथा यत्र गच्छे वारडियग्णं ति रक्तवस्त्राणा तत्त-ढिया णंति नील पीतादिरंजित वस्त्राणा च परिभोग. क्रियते किं कृत्वेत्पाह् मुक्त्वा परित्यज्य किं शुक्लवस्त्रं यतियोग्यावर मित्यर्थः तत्र कामे रतिः का मर्यादा न काचिद्पीति द्व अपिगाथा छदसी ॥ ८९ ॥

अर्थः—भगवंत श्री महावीर वर्द्धमान स्वामी गौतमगणधर ने कहे छे, हे गौतम हे गणधर, जे गच्छमा रक्त वस्त्रोने अने नीला पीला रंगित पहेरछे एटले रंगेला वस्त्र भोगने, शुं करी ने तेकहे छेके, जती ने जोग्य वस्त्र सुपेत छे, तेतो न पागरे, अने रगेलां वस्त्र पागरें, ते गच्छमा, सीम मर्यादा. एटले ते गच्छ मर्यादा रहित छे ॥ वली साध्वीयो ना अधिकार मां पण लखे छे ॥ गणि गोअम अज्जाओ वि अ से अवत्थ विवज्जिउं सेवए चित्त रूवाणी न सा अज्जा विआहिआ ११२ टीका ॥

हे गणिन् गौतम या आर्या उचितं श्वेतवस्त्र विवर्ज्य चित्ररूपाणि विविधवर्णानि विविध चित्राणि वा, वस्त्राणि सेवते उपलक्षणात्पात्र दंडाद्यपि विचित्ररूपं सेवते सा आर्या न व्याहृता न कथितेति विषमाक्षरेति गाथाच्छदः ॥ ११२ ॥

अर्थः—हे गणधर गौतम जे साध्वी जोग्य वस्त्र सुपेत एटले धोला वस्त्र, तेहने वर्जी ने अनेक प्रकार ना बीजां रंगेला वस्त्र पेहरे, ए कहेवाथी पातरा दाडा प्रमुख उपगरण रंगेला राखे तो, ते आर्यामें कही नथी, ऐटले जै साध्वी पीला प्रमुख वस्त्र पातरा दाडा रंगेला राखे तो ते साध्वी नथी, एह अजोग्य वेशनी धर-नारीने में साध्वी कही नथी, साध्वी तो श्वेत वस्त्र पेहरे तेहज छे ॥ तथा मंगल दंडी जी, तुम्हारे ही सहयोगी दडी धनविजय

श्री " चतुर्थ स्तुति निर्णय शंकोद्धार " की पृष्ठ १७४ की पंक्ति ९ भी से पीतादि रंगित वस्त्र पहरने वाले साधुओं को, " जैन लिंग के विरोधी, तथा विडंबक अर्थात् भांड चेष्टा करने वाले " स्पष्टतया बतलाते हैं यह लिखते हैं कि—

जैन लिंगनो विरोधी एवी रीते थाय छे के श्री वीर शासन ना साधुओं ने श्री जैनशास्त्र में सपेत मानो पेत जीर्णप्राय कपड़ां धारण करवां कह्यां छे ने पीळा प्रमुख कपड़ां धारण कर वा वाळा ने महा प्रभाविक सिरा पुरगच्छीय मंडन आचार्य श्री वादिवेताळ शांतिसूरि जीए उत्तराध्ययन नी बृहद्वृत्तिमां विडंबक " एटले भेष विगोवना वाळा आदि शब्दे भांड चेष्टा ना करवा वाळा कह्या छे.

ते पाठ ॥ अत्र च द्वितीयं द्वारं लिंगमिति लिंग्यते गम्यते अनेनायं वृतीति लिंगं वर्षाकल्पादिरूपो वेषस्तदभिधित्साय " अचेल " इत्यादि प्राग्वद्व्याख्यातमेव नवरं " महामुणिति " महामुने पठंति च " महायसाति " लिंगे द्विविधे अचेलकतया विविधवस्त्रधारकतया च द्विभेद इति सूत्रार्थः ॥

" इच्छियमिति " इष्ठ मनुमतं पार्श्वर्धमानतीर्थ कृद्भ्यामिति प्रक्रमो वर्द्धमानविनेया मार्हि रक्तादि वस्त्रानुज्ञाते वक्रजडत्वेन वस्त्ररंजनादिषु प्रवृत्तिरतिदुर्निवारा स्यादिति न तेन तदनुज्ञातं पार्श्वशिष्यास्तु न तथेति रक्तादीनामपितेना नुज्ञातमिति भावः किंच प्रत्यर्थं चामी व्रतिन इति प्रतीति निमित्तं । अस्य ? लोकस्यान्यथा हि यथाभिरुचितं वेषमादाय पूजादि निमित्तं विडंबकादयोपि वयं व्रतिन इत्यभिधीरन् ततो

व्रतिष्टपि न लोकस्य व्रतिन इति प्रतीतिः स्यात् किं तदेव मित्याह नानाविधिविकल्पनं प्रक्रमाज्ज्ञानाप्रकारोपकरण परि कल्पनं नानाविधं हि वर्षाकल्पाद्युपकरणं यथा द्यति श्वेत्र सम्भवतीति कथं न तत्प्रत्ययहेतु स्यात्तथा यात्रासंयमनिर्वाह- स्तदर्थं विना हि वर्षाकल्पादिकं वृष्ट्यादौ संयमबाधैव स्यात् । ग्रहणं ज्ञानं तदर्थं च कथंचिच्चित्तविप्लवोत्पत्तावपि गृह्णातु यथाहं व्रतीत्येतदर्थं लोके लिंगस्य वेषधारणस्य प्रयोजनं मिति प्रवर्त्तनं लिंगप्रयोजनं ॥ छ ॥ अथत्त्युपन्या से "भंते पइन्नाउत्ति" तु शब्दस्यैवंकारार्थत्वाद्भिन्नक्रमत्वाच्च भंदेव प्रतिज्ञानं प्रतिज्ञाभ्युपगमः प्रक्रमात्पार्श्ववर्द्धमानयोः प्रतिज्ञा स्वरूपमाह "मोक्खस्सब्भूय साहणत्ति" मोक्षस्य सद्भूतानि च तानि तात्विकत्वात्साधनानि च हेतुत्वात् मोक्ष सद्भूत साधनानि कानीत्याह ज्ञानं च यथावद्द्व बोधो दर्शनं च तत्वरुचिश्चारित्र च सर्वत्र सावद्यविरतिरेव इत्यवधारणे स च लिंगस्य मुक्तिः सद्भूत साधनतां "व्यवच्छिन्नति" ज्ञानाद्येव मुक्तिकारण न तु लिंगमिति श्रूयते हि भरतादीना लिंगं विनापि केवलज्ञोनोत्पत्तिनिश्चय इति निश्चयनये विचार्ये व्यवहारनये तु लिंगस्यापि कथंचिन्मुक्तिसद्भूतहेतुतेष्यत एव तदयमभिप्रायो निश्चये तावल्लिंग प्रत्याद्रियत एव न व्यवहार एव तूक्तहेतुभिस्तदिच्छतीति तद्भेदस्य तत्वतोऽकिंचित्करत्वान्न विदुषा विप्रत्ययहेतुता शेषं स्पष्टमिति सूत्रार्थः ॥

भावार्थ ॥ वली इहा बीजु द्वार लिंग नु छे लिंग ते स्युं के, जाणिए जिणे करी ने एटले ए लिंगे करी ने जाणीए जे ए व्रती छे तेहने लिंग कहीये एटले वर्षा कलपादि रुप वेष तेहने

अधिकार करी ने कहे छे अचेल इत्यादिक नो अर्थ पूर्वे कह्यो छे एम ते मां एटलो विशेष "महामुनि महाअसवंत" ते मो लिंग बे प्रकारे एकतो अचेलकपणे करी ने बीजु अनेक प्रकार ना वस्त्र धारवापणे करी ने बे भेद छे, एह मां लिंग ते मलादिक धारवानुं कर्युं एटले भेद मानो पेल वस्त्र धारे ते लिंग महावीर स्वामीना साधु नु छे, अनेक प्रकार ना बहु मोघा पंच वर्णा वस्त्र धारे ते लिंग पार्श्वनाथ जी ना साधु नु छे, अने महावीर ना साधु जो रंगेला तथा बहु मोघा वस्त्र पहिरे छे तेहने कुलिंगी कहिये इहा कोई कहेसे जो रंगेला वस्त्र पहिरवामी कुलिंग कहो तो पार्श्वनाथ स्वामी ना साधु कुलिंगी थशे तेह ने कहिये, एम न बोल वुं, तेहुने तो पांच वर्णा पहिरवा मोज आचार छे जेहुना आचार में तथा आज्ञामे चाले ते कुलिंग न कहिये माटे ते कुलिंग न होय हवे जे लिंगमां सुं छे तेहनो उत्तर वृत्तिकार कहे छे. जे पूर्वे पार्श्व नाथ स्वामी ना साधुवों ने सचेलपणु अने वर्द्धमानस्वामी ना साधुवों ने अचेलपणु मान्युं तीर्थंकरों ए ते कांइक छे एटले ए मार्ग इम ज जोइये एह मां शंका म करवी अन जो कोई इम कहे एह मां शुं छ तेने कहे छ जो ए अधिकार इम म मानिवे माने वर्द्धमान स्वामीना चेला ने रंगवानी मर्याद कहिये तो वर्द्धमान स्वामी ना साधु वस्त्र जड छ ते सदा रंगवानुम करता रह ए होय प्रतविमिटाइवी अति कठिण थाय ते माटे यहुं ने वस्त्र रंगवुं सर्वथा वर्ज्युं, अने रंगेलु वस्त्र धारवुं पण पूर्वे निषेध कर्युं छ अने पार्श्वनाथ जी ना शिष्य एहवा नथी माटे तेहुंने रंगेला वस्त्रनी आज्ञा आपी प्रभु प्राज्ञपणा थी ए परमार्थ छ वली कहे छ के लिंग मां शुं छे तेहनो परमार्थ देखाडे छेके लिंगथी

लाकों ने प्रतीत उपजे जे ए साधु छे अने जो जो लिंग न देखाडिये तो मन मा आवे ते हवो वेप करीने पूजा ने अर्थे भाड प्रमुख पण कहे जे अमे पण साधु छीए ते माटे लोक मा ए साधु छे एहवी प्रतीति न थाय केम के अनेक प्रकारना विकल्प एटले नाना प्रकारना उपगरणनी कल्पना अधिकार थी जाणवा मा आवे के वर्षा कल्पादिक उपगरण साक्षात् साधु ने ज होय एटले स्वेत मानो पेत कंवलादिक उपगरण तो यति ने ज होय अने रंगेला प्रमुख उपगरण भाडादिकों ने होय एहवी प्रतीति केम न होय ए प्रयोजन लिंग देखाडवानु छे तथा संयम निर्वाहने अर्थे वस्त्रादिक राखे, न राखे तो वृष्टि वर्षना संयम न बाधा ज थाय तेहने अर्थे लिंग धारे तथा कोई वखते चित्त चले तो लिंग धारेलुं होय तो जाणे के हु साधु थयो छुं माटे अकार्य किम करु एटला कारण माटे लिंग नुं राखवानुं प्रयोजन छे एटले लिंगधारवानु प्रयोजन देखाडयु हवे कोइ निश्चय नयने अवलंबन करी ने वेष ने निषेधे तेहने कहे छे " अथेत्युपन्यासे " इत्यादिक नो भावार्थ एम छे के पार्श्वनाथ स्वामी अने वर्द्धमान स्वामी ए बेहुने ए प्रतिज्ञा छे ते कहे छे के मोक्ष नुं सत्य साधन निश्चय नये तो ज्ञान दर्शन चारित्र ज छे ने लिंग ने मुक्ति भूत साधन पणुं न थी मानता केम के ज्ञानादिक छे तेही ज मोक्ष नु सत्य कारण छे पणलिंग मोक्ष नु कारण न थी केम के भरतादिकों ने लिंग विना केवलज्ञान उपज्यु एम साँभलिये छीए एम निश्चय नयना विचारमा तो लिंगनी काइ पण जरूर न थी पण एकात मानवाथी व्यवहार नो लोप थाय तो शासनोच्छेद पाप लागे ते माटे व्यवहार नयना मतमा तो लिंग ने पण मोक्ष

सद्भूत कारण पणुं ज छे एटले निश्चय मां तो ज्ञान दर्शन चारित्र ज मोक्षना कारण, पण व्यवहारे लिंग पण मोक्ष नुं कारण छे तेमज निश्चय नयने मते पण एज अभिप्राय छे जे लिंग प्रत्ये तो आदर करवो पण ते आदर केवल व्यवहारथी ज नथी इच्छता, केम के तत्वथी व्यवहार निश्चयनो भेद विज्ञान ने विप्रत्यय नो हेतु कांई पण थवो ज नथी वस्तुताए प नय अपेक्षाए एकज छे ए भावार्थ स्पष्ट छे एटले महावीर स्वामी ए लिंग कह्युं ते अने पार्श्वनाथस्वामी ए लिंग कह्युं ते पोत पोताना तीर्थमां मोक्ष नु कारण छे माटे वीरना साधु जो नाना प्रकार ना रंगेला तथा मूल्य थी बहुमोर्घा वस्त्रधारण करे तो भांड लिंग थाय अने कुलिंग थाय एम जणाय्यु छे तथा लिंग मां स्युं छे तेहनुं कारण पण जणाव्यु ॥ एवी रीतें श्री आचारांग सूत्र १ आचारांग वृत्ति २ श्री सूयगडांग सूत्र ३ श्री सूयगडांग वृत्ति ४ श्री निशीथ सूत्र ५ श्री निशीथ चूर्णि ६ श्री ओघनि र्युक्ति मूल ७ श्री ओघ निर्युक्ति टीका ८ श्री आवश्यक निर्युक्ति मूल ९ श्री आवश्यक निर्युक्ति वृत्ति १० श्री पंचाशक मूल ११ श्री पंचाशक टीका १२ श्री ठाणांग सूत्र १३ श्री ठाणांग सूत्र वृत्ति १४ श्री गच्छाचार पयन्ना सूत्र १५ श्री गच्छा चार पयन्ना वृत्ति १६ पिंड निर्युक्ति मूल १७ पिंड निर्युक्ति वृत्ति १८ श्री भगवती सूत्र १९ श्री भगवती सूत्र वृत्ति २० कल्पसुबो धिका श्री विनयविजय श्री उपाध्याय कृत २१ श्री दशठाणा मूल २२ श्री दशठाणा वृत्ति २३ इत्यादिक ग्रंथों मां श्री वीर शासनना साधुओं ने सफेत मानो पेत जीर्ण प्राय वस्त्र धारण करवां कह्यां छे अने वर्णभ्रष्ठ प्रमुख कारणे पोतवानुं विधान

कह्युं छे पण रंगवानु विधान कह्यु नथी तथा श्री निशीथ सूत्र मा लोद कर्क प्रमुख द्रव्य, वस्त्र पात्र ने लगाव वा कह्या ते श्री निशीथ चूर्णिमा मदिरा प्रमुख दुर्गंध टालवाने कह्यां छे पण निरंतर गाढा गाढ कारण विना भेप वदलाववाने अर्थे कह्यां नथी इत्यादिक तर्क वितर्क समाधान सहित पूर्वोक्त सूत्रग्रंथो ना पाठ भावार्थ सहित अस्मत्कृत स्तुति निर्णय विभाकर थी जाणवा एम पूर्वोक्त अनेक शास्त्रना अभिप्राय थी सपेत वस्त्र त्यागी **पीला कपड़ा प्रमुख धारण करे तेने जैनलिंगनो विरोधी जाणवा**" अव कहिये मंगल दंडी जी, जो शठ ऐसा कहते हैं कि, "नये कपडे को तीन पसली रंग फरमाया है देख पाठ सूत्र निशीथ मे" उन के मुखपर तुम्हारे ही सहयोगी दंडी धन विजय जी का उपर्युक्त लेख चपेटा के सदृश है या नहीं ? और भी एक तीक्ष्ण चूरण इस व्याधि को हटाने के लिये लीजिये कि तुम्हारे शास्त्रविशारद जैनाचार्य्य दंडी धर्म्म विजय जी भी अपने रचित "पुरुपार्थ दिग्दर्शन" की पृष्ठ ५ की पंक्ति १६ मी से स्पष्टपने यह लिखते हैं कि "**अगुरु लोग रंगीन वस्त्रों को धारण कर जगत को ठगते हैं**" जिस का स्पष्ट अर्थ यह होता है कि, केवल जगतको ठगने ही के लिये अगुरु लोग रगीन वस्त्रों को धारण करते हैं, परंतु मंगल दडी जी, धर्म्मविजय जी जैसे पुरुषों का यह कहना कि "अगुरु लोग रंगीन वस्त्रों को धारण कर जगत को ठगते हैं" केवल कथा ही के वेगण रह गये हैं अन्यथा धर्म्मविजय जी स्वय रंगीन वस्त्र क्यों धारण करते ? आश्चर्य्य तो इस बात का है कि जो शास्त्रविशारद जैनाचार्य्य के अलंकार से अलंकृत हैं

उनका इस तनिकसी ढोकोक्ति पर भी ध्यान नहीं पहुंचा कि
कहते हैं करते नहीं मुह के बड़े लबार ॥
रे मगल ढूंढी ! जब कि तेरे ही अनेक मान्य ग्रंथों में तो वीर शासनानुयायी साधुओं का पीतादि रंगीन वस्त्र पहिनने मने करे हैं और तू अपनी "अष्टेगीका त्रिशिका" में पीतादि रंगीन वस्त्र साधुओं को पहिनना सिद्ध करता है, अत एव इस से तो यह स्पष्ट ही सिद्ध है कि, तू पक्की मताग्रस्त वीर भगवान् का अनुयायी नहीं, हां यदि कोई महा पाखंडी ढूंढी होवे तो तेरा यह पाखंड तुम ही मुबारिक रहे

रे हिंसाधर्मी ढूंढी, सवइ में छंद के तीसरे चरण में तथा जिस के नोट में तू लिखता है कि,

> इसी सूत्र में देख ले बाबत रजोहरण क्या गाया है॥
> नोट:—श्री निशीथ सूत्र में फरमाया है कि जो
> साधु साध्वी प्रमाण रहित रजोहरण रखे या
> रखने वाले को मदद देवे उस दंड आता है
> तो अब ढढियों को ३२ सूत्रों के मूल पाठ में
> रजोहरण का प्रमाण खोजना चाहिये।

उत्तर० रे ढूंढी, निशीथ सूत्र के पांचवें उद्देश में जो वीर पिता ने रजोहरण के विषय में फरमाया है उसे तो हम सर्वदा ही सत्य मानते हैं और इसी से जैन साधु प्रमाणातिरिक्त रजोहरण नहीं रखते हैं, परंतु रे हिंसारत ढूंढी ! बत्तीस सूत्रों के मूल पाठ में, हम को रजोहरण के प्रमाण की खोज करने की क्या आवश्यकता है? क्यों कि खोज तो वह करे कि, जो नहीं

जानता होवे, रे विवेकविकल दंडी ! हम ने तो रजोहरण का प्रमाण मूल सिद्धांतानुसार ही गुरुमुख से ठीक ठीक धारण कर रक्खा है अत एव हमे तो खोज करने की आवश्यकता नहीं है, यदि तुझ दंडी को रजोहरण का प्रमाण जानना है तो हम से साक्षात् विनयपूर्वक पूंछ ! यदि हम तुझे ज्ञान देने के योग्य समझेंगे तो वतलाय देवेंगे ?? अठारहमे छलच्छंद के प्रथम चरण मे मंगल दंडी जी, आपने मिथ्यात्व रूप भंग की तरंग मे यो अडग की वडग लेखनी चलाई है कि

पप्पा—पांच कल्याणक जिनवर जिन आगम में गाया है ॥

उत्तर—दंडीजी धन्यहैं आप जैसे सुलेखको को कि, जिन की लेखनी से जो भी लेख लिखे जाते हैं सो प्रायःअशुद्धि, मिथ्या, गर्वप्रदर्शक और कलुपोत्पादक आदि गुणों से पूरित लिखे जाते हैं ? क्या दंडी जी आप का जन्म इसी लोकोक्ति को चरितार्थ करने के लिये हुआ है कि

लिख न सकें, चाहें हम शुद्ध,
पर कर सकते है हम युद्ध ?
लेखक छोटे वड़े तमाम,
डरते हम से आठों याम ??

मगल दंडी जी, जिनोक्त ३२ सिद्धांतों के मूल पाठ में ऐसा कहीं भी नही कहा है कि "जिनवर के नियमसे पंच कल्याणक होते हैं," यद्यपि चउदह तीर्थंकरो के गर्भादि कार्य्य एक एक नक्षत्र में ही हुए हैं तिनका वर्णन श्री "स्थानाग" जी सूत्र के पंचम स्थान में लिखा है, परन्तु तिनगर्भादिक कार्य्यों को तहा

"कल्पसूत्र" नहीं कहे हैं; यथा ॥ "पढममप्पमेण अरहा" पंच चित्ते होत्था,

तंजहा—चित्ताहिं चुए, चइत्ता गब्भं वक्कंते चित्ताहिं जाए चित्ताहिं मुंडे भवित्ता आगारा ओ अणगारियं पव्वइए, चित्ताहिं अणंते–अणुत्तरे निव्वाघाए–निरावरणेकसिणे पडि पुण्णे–केवल वर णाण दंसणे समुप्पण्णे; चित्ताहिं परि निव्वुए ॥ पुप्फ दंतेणं अरहा पंच मूल होत्था–मूले णं चुए, चइत्ता गब्भंवक्कंते, एवं चेव ॥ एवमेवं णं–"अभिलावे णं" इमा ओ गाहा ओ अणु गंतव्वाओ–"पउमप्पभस्स चित्ता, मूलो पुण होइ पुप्फ दंतस्स, पुव्वा साढा सीयलस्स, उत्तर विमल स्स भद्दवया॥१॥ रेवइ य अणंत जिणे, पुस्सो धम्मस्स संति णो भरणी कुंथु स्सकत्तिया ओ, अरस्स तह रेवइए ॥ मुणि सुव्वयस्स सवणो, अस्सिणि णमि णेम नैमिणो चित्ता, पास स्स विसाहा, पंचय हत्थुत्तरे वीरो ॥ २ ॥ समणे भगवं महावीरे पंच हत्थुत्तरे होत्था, तंजहा —हत्थुत्तराहिं चुए, चइत्ता गब्भं वक्कंते, हत्थुत्त राहिं गब्भा ओ–गब्भं साहरिए, हत्थुत्तराहिं जाए, हत्थुत्तरा हिं मुंडे भवित्ता, 'जाव' पव्वइए; हत्थुत्तरा हिं अणंते–अणुत्तरे 'जाव' केवल वर णाण दंस णे समुप्पण्णे"

और मंगल वेदी जी भी "आचारांग" जी सूत्र के दूसरे श्रुतस्कंध के 'भावनाख्य' अध्ययन में महावीर भग वान के गर्भादि पंच उत्तरा फाल्गुणी नक्षत्र में हुये कहे हैं, यथा। ते णं काल णं ते ण समए णं समणे भगवं महावीरे पंच हत्थुत्तरे या वि होत्था–हत्थुत्तराहिं चुए, चइत्ता गब्भं वक्कंते हत्थुत्तराहिं गब्भा ओ गब्भं साहरि ए, हत्थुत्तराहिं जाए,

इत्थुतरा हिं सव्वओ सव्वताए मुंडे भवित्ता, आगारा ओ अणगारियं पव्वइ ए; इत्थुतराहिं कसिणे पडि पुण्ण अव्वाघाए निरावरणे अणंते अणुत्तरे केवल वरणाण दंसणे समुप्पण्णे ”। परंतु यहा भी पाठ में गर्भादि पंच को कल्याणक नहीं कहे पुनःएतादृश ही वर्णन “दशाश्रुतः स्कंध” सूत्र के अष्टमाध्ययन में कहा है परंतु तहा भी मूलपाठ में गर्भादिकों को कल्याणक नहीं कहे पुनः तुम दंडीओं के ही मान्य “कल्पसूत्र” के मूल में भी कहीं गर्भादिको को “कल्याणक” नहीं कहे

तथा मंगल दंडी जी “जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति” सूत्र में ऋषभ देव भगवान के गर्भादि पंच उत्तराषाढा नक्षत्र में हुए कहे हैं, परंतु वहा के पाठ में भी गर्भादि पंच को “कल्याणक” नहीं कहा, अत एव मंगल दंडीजी, आपका यह लेख असमंजस है किः—पाच कल्याणक जिनवर जिनआगम में गाया है, यदि दंडी जी तीर्थंकरों के गर्भ जन्मादिकों को आप कल्याणक ही मानते हो तो भले ही मानों इस में हमारी कुछ भी हानि नहीं, क्यों कि तीर्थंकरोंके जन्मादि लोक को हर्ष के कारण होनेसे कल्याणप्रद अवश्य हैं, परंतु तुम संख्या का नियम लिखते हो और इस पर भी संतोष न रख कर अपनी कल्पना को सिद्ध करने के लिये जिनागमों की मिथ्या साक्षी लिखते हो सो तुम्हारा निराहठ, और अज्ञान ही है,

क्यों कि दंडी जी, यदि तुम्हारे मन्तव्यानुसार तीर्थंकरों के गर्भादिकों को “कल्याणक” ही माने जाय तो भी पाच ही नहीं किन्तु अधिक भी होते हैं, देखिये दंडी जी श्री “जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति” सूत्र में यह पाठ लिखा है कि “उसभेणं अरहा कोसलिए

पंच उत्तरा साढे अभिए छट्ठे होत्था तंजहाः उत्तरा साढाहिं चुए, चइत्ता गब्भं वक्ते, उत्तरा साढाहिं जाए, उत्तरा साढाहिं राया भिसे ए संपत्ते, उत्तरा साढाहिं मुंडे भवित्ता, आगारा ओ अणगारियं पव्वइए, उत्तरा साढाहिं अणंते "जाव" केवल वरणाण दंसणे समुप्पणे अभिइणा परिनिव्वुडे इस पाठ का भावार्थ यह है कि ऋषभदेव अरिहंत कौशलिक के पांच उत्तरा षाढा नक्षत्र में और छट्ठा अभिजित् नक्षत्र में हुआ, यह थे किः उत्तराषाढा नक्षत्र में गर्भपने में उत्पन्न हुवे, उत्तराषाढा नक्षत्र में जन्मे उत्तराषाढा नक्षत्रमें राज्याभिषेक हुआ उत्तराषाढा नक्षत्र में दीक्षित हुवे उत्तराषाढा नक्षत्र में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और अभिजित् नक्षत्र में मोक्ष हुवे अब ढूंढी जी, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र के उक्त पाठानुसार तुम को ऋषभदेव भगवान के छह "कल्याणक" मानने चाहिये फिर पांच की संख्या का नियम लिखना यह तुम्हारा निरा अज्ञान नहीं है तो क्या है? और ढूंढी जी तुम यह भी नहीं कह सकते हो कि 'ऋषभदेव भगवान के राज्याभिषेक के सुअवसर पर इन्द्रादि देव महोत्सव करने को नंदीश्वर द्वीप में नहीं गए हैं इसलिये यह कल्याणक नहीं है, क्यों कि ढूंढी जी किसी भी तीर्थंकर के गर्भ के समय इंद्रादिदेव नंदीश्वर द्वीप में अठाई महोत्सव करने को नहीं जाते तो फिर तीर्थंकरों के गर्भ को तुम्हें कल्याणक नहीं मानना चाहिये देखो ढूंढी जी तुम्हारे ही मान्य कल्प सूत्र में यह स्पष्ट लिखा है कि "महावीर भगवान जब देवानंदा जी की कुक्षि में अवतरे उस की खबर इन्द्र को बहुत काल पीछे पडी यदि गर्भ समय में इन्द्रादि देव महोत्सव करने

को नंदीश्वर द्वीप में जाते होते तो वयाशी रात्रि तक शक्रेन्द्र महाराज अज्ञात अवस्था मे क्यों रहते ! इसलिये यह स्पष्ट सिद्ध है कि तीर्थंकरों के गर्भ के समय इन्द्रादि देव नंदीश्वर द्वीप में अठाई महोत्सव करने को नहीं जाते हैं ?? अठारहमे छंद के दूसरे तथा तीसरे चरण में तुम ने लिखा है कि

इन्द्र सुरासुर मिल कर उत्सव करके आनंद पाया है,
दीप नंदीश्वर भगवती जंबुदीपपन्नती वताया है ।

उत्तर—दंडी जी तुम्हारा उक्त लेख सत्यासत्य रूप होने से असमंजस है, क्यों कि भगवती जी तथा जम्बूदीप प्रज्ञप्ती में ऐसा पाठ कहीं भी नहीं लिखा है कि तीर्थंकरों के गर्भादि पांचों समयों पर इन्द्रादि देव नंदीश्वरदीप में अठाई महोत्सव करने को जाते हैं, हा जंबूद्वीप प्रज्ञप्ती सूत्र में यह अवश्य लिखा है कि ऋषभदेव भगवान के निर्वाण की महिमा करिके इन्द्रादि देव नँदीश्वर द्वीप मे अठाई महोत्सव करने को गये इस वात को तो हम भी सत्त्य मानते हैं, और इन्द्रादिदेव का यह जीत आचार भी मानते हैं कि, तीर्थंकर भगवान के जन्म दीक्षा ज्ञान तथा निर्वाण के समय नंदीश्वर द्वीप में जाके अठाई (अठाई शव्द संज्ञान्तर है परंतु नियमित आठ दिन का वाचक नहीं) महोत्सव करें ! परंतु दंडी जी इन्द्रादि देवों कृत तिस अठाई महोत्सव को हम निर्जरा का हेतु धर्म कृत्य नहीं मानते, क्योंकि इन्द्रादि देव नंदीश्वर द्वीप में अठाई महोत्सव करने को केवल तीर्थंकरों के ही जन्मादि समयों पर जाते हों यह नियम भी नहीं, किंतु चातुर्मासिक प्रतिपदादि पर्व दिवसों में तथा अन्यान्य हर्ष के

समय पर भी जाते हैं और अठाई महोत्सव करते हैं, श्री "जीवाभिगम जी" सूत्र में यह स्पष्ट लिखा है कि,

"तत्थ णं बहवे भवण वई वाण" मंतर जोइस वेमाणिया देवा चाउमासिय पाडिवए सु संवच्छरे सु य अण्णेसु जिण जम्मण निक्खमण णाणु पाव परि णिव्वाण महिमा सुय देवकज्जे सुय देव समुदए सुय देव समिता सुय देव समवाए सुय देव पयोयणे सुय एगंत वसहिया समुवागया समाणा पमुईय पक्की लिया अट्ठाहिया ओ महा महिमाओ करे माणा पाले माणा सुहं सुहे णे विहरइ ॥ एवं जीवाभिगम जी सूत्र के पाठानुसार स्पष्ट सिद्ध है कि इन्द्रादि देव तीर्थंकरों के जन्मादि समयों से अतिरिक्त अन्यान्य समयों पर भी अठाई महोत्सव करने को नंदीश्वर द्वीप में जाते हैं अतएव इन्द्रादिदेवों का यह जीत आचार अर्थात् लौकिककृत्य है कि नंदीश्वर द्वीप में जाकर अठाई महोत्सव करना परंतु निर्जरा का हेतु धर्म कृत्य नहीं और न तीर्थंकर महाराज ने किसी सिद्धांत में इस अठाई महोत्सव को निर्जरा का हेतु धर्मकृत्य फरमाया है ! ! मंगल वंदी जी, जगजीत में छठ छंद में तुमने लिखा है कि, फफ्फा—फेर नहीं भगवती में पाठ खुलासा आया है, जंघा चारण विद्या चारण मुनियों सीस नमाया है ॥ मरिहंत अरिहंतचैत्यव साधु तीन शरण फरमाया है।

उत्तर:-वंदी जी तुम्हारा यह लेख भी सत्यासत्य रूप होने से असमीचीन है, क्योंकि भगवती जी सूत्र में ऐसा खुलासा पाठ कहीं भी नहीं है कि, अमुक समय पर अमुक जंघाचारण तथा अमुक विद्याचारण मुनि ने अमुक तीर्थंकरों की प्रतिकृति को

शीश नमाया है, अथवा आये काल में अमुक समय पर अमुक जंघाचारण तथा विद्याचारण मुनि अमुक तीर्थंकर की प्रतिकृति को शीश-नमावेंगे; तो दंडी जी मिथ्या साक्षी दे २ के सत सिद्धातो से लोगों को रुचि को क्यों हटाते हो? और यदि दंडी जी तुम कुछ पण्डित मानीपना रखते हो तो भगवती सूत्र का वह पाठ लिख कर प्रकट करो कि जिस में यह लिखा होवे कि, अमुक समय पर अमुक जंघाचारण तथा विद्याचारण मुनि ने अमुक तीर्थंकर की प्रतिकृति को शीश नमाया है, अथवा अमुक समय पर शीश नमावेंगे, अन्यथा तुम्हारा उत्सूत्र भाषण तुम्हें ही मुबारिक हो, हा भगवती जी सूत्र के वीश में शतक के नवम उद्देशे में जंघाचारण अथवा विद्याचारण मुनियों की ऊंची तथा तिरछी गति का विषय भगवंतों ने अवश्य वर्णन किया है परंतु तहा तीर्थंकरों की प्रति कृति को शीश नमाने का पाठ तो कहीं लेश मात्र भी नहीं लिखा हैं, ।

हाँ तिस वर्णन में "**चेइया इं वंदइ**" ऐसा पाठ तो खुलाशा लिखा है और उक्त सूत्र का गुरुगम्य से यह परमार्थ धारण किया है कि, जंघाचारण अथवा विद्याचारण मुनि तहां नंदीश्वरादिक्षेत्रों में इरिया वही का पडिक्कमण करते हुए चतुर्विं-शतिस्तव [उक्तित्तन] का पाठ करते हैं, तथा भगवान के ज्ञान दर्शन की स्तुति करते हैं, केवलज्ञान और केवलदर्शन प्रति सामयिक तथा भिन्न विषयिक हैं इसलिये गणधर महाराज ने "**चेइयाइं**" ऐसा बहुवचन का प्रयोग दिया है क्योंकि प्राकृत में द्विवचन नहीं होता है किंतु "**स्यादेर्भवे द्वि**

वचनं बहु वाक्य रूपं" इस प्राकृत व्याकरण के सूत्र से द्विवचन के स्थान में बहुवचन ही होय जाता है,

परंतु यहां जंघाचारण तथा विद्याचारण मुनियों के वर्णन में "चेइयाई वंदइ" इस पाठ का यह भावार्थ नहीं है कि, वह मुनि यहां पर तीर्थंकरों की प्रतिकृति को शीश नमाते हैं क्योंकि रुचकद्वीप तथा मानुषोत्तर पर्वत पर तो सिद्धायतन तथा जिन पडिमा का जिनोक्त सिद्धांतों में कहीं जिकर भी नहीं है परंतु "चेइयाई वंदइ" यह पाठ तो वहां भी कहा है, ढूंढी जी इस से स्पष्ट सिद्ध है कि "चेइयाई वंदइ" इस पाठ का परमार्थ जो हमने उपरि लिखा है सोही सत्य है और जो तुम ढूंढी हठ से मानुषोत्तर पर्वत पर चार सिद्धायतन बतलाते हो तथा कल्पित द्वीप सागरपन्नति और रत्नशेषरसूरि कृत क्षेत्रसमासग्रंथ की साक्षी देते हो सो भी व्यर्थ कपोल बजाते हो क्योंकि कोई भी आर्य्य विद्वान उक्त दोनों ग्रंथों के सम्पूर्ण कथन को जिनोक्त सिद्धांतों की तरह प्रमाण नहीं मान सकते, हां कोई भी ग्रंथ क्यों न हो अगर अविरुद्ध सब का मान्य है। ढूंढी जी, तुमसे हम ही यह पूछते हैं कि आपके रत्नशेषरसूरि जी को ऐसा कौनसा अतिशय ज्ञान प्रकट हुआ था कि जिस से उन्हों ने मानुषोत्तर पर्वत पर चार सिद्धायतन जाने, क्या वह तीर्थंकर तथा गणधरों से भी अधिक ज्ञानी थे ? जो तीर्थंकर तथा गणधरों ने तो अंग तथा उपांगादि बत्तीस सत् सिद्धांतों में मानुषोत्तर पर्वत का वर्णन जहां कहीं भी किया है वहां चार सिद्धायतन नहीं फरमाये और आपके रत्नशेषरसूरि जी ने तो मानुषोत्तर

पर्वत पर चार सिद्धायतन वतला ही दिये, वाह दंडी जी धन्य है आपके ऐसे अधिक प्ररूपक सूरियों को। पुनः दंडी जी जो तुमने अरिहंत अरिहंतचैत्य, और साधु ये तीन 'शरणे' माने हैं सो भी तुम्हारा अनभिज्ञपनाही है, क्योंकि श्री "भगवती" जी सूत्र में वस्तुतः दोही शरणे कहे हैं एक तो अरिहंत भगवंत का और दूसरा अणगार महाराज का, दंडी जी, भगवती जी सूत्र के ३ शतक के दूसरे उद्देशे में शक्रेन्द्र महाराज ने दोनो की ही अत्याशातना मानी है परंतु तुम दंडी अरिहंतचैत्य शब्द का अर्थ प्रतिमा कहकर जो तीसरा शरणा मानते हो सो नितात मिथ्या है क्योंकि यदि अरिहंत चैत्य शब्द का अर्थ प्रतिमा होता और तीसरा शरण उसका माना जाता तो शक्रेन्द्र महाराज तीसरी अत्याशातना प्रतिमा की भी मानते, परंतु उन्हों ने अरिहंत भगवंत और अण गार महाराज इन दोनो की ही अत्याशातना मानी है, तत्पाठः **तं महादुक्खं खलु तहा रूवाणं अरहंताणं भगवंताणं अणगाराणय अच्चासादणया एत्तिकट्टु** इस पाठ से यह स्पष्ट सिद्ध है कि जो तुम दंडी तीसरा शरणा तीर्थंकरों की प्रतिमा का मानते हो सो नितान्त मिथ्या मानते हो ? ?

* * *

बीस में छंद में दंडी जी तुमने लिखा है कि

बच्चा—बडे विवेकी देवा दशवैकालिक गाया है।
शुद्ध मुनि को सीस नमावे नर गिणती नहीं आया है ॥
तदपि मूढ़ ढूढ देवन की करणी कुछ नहीं भाया है।

उत्तर-ढूंढी जी, तुम्हारा यह लेख द्वेष पूरित पूर्णअनभिज्ञपने का है, क्योंकि ढूंढी जी, सर्व देव विवेकी नहीं हो सकते अर्थात् जो सम्यग्दृष्टि देव होवे हैं सो ही विवेकी हो सकते हैं परंतु मिथ्यादृष्टि देव कदापि विवेकी नहीं हो सकते और न मिथ्यादृष्टि देव शुद्ध मुनियों को भक्ति युक्त धर्मबुद्धि से शीस ही नमाते हैं, ढूंढी जी, शीश नमाने की तो कथा ही दूर रहिये, क्योंकि मिथ्यादृष्टि देवोंने तो मुनियों को शीस नमाने के बदले घोर उपसर्ग दिये हैं, संगम देव ने "महावीर" भगवान को छह मासतक घोर उपसर्ग दिये 'पार्श्व" भगवान को कमठ के जीव मेघमाली मिथ्यात्वी देवने घोर कष्ट दिया ऐसा वचन तुम्हारे मान्यकल्प सूत्र में भी लिखा है,

तो ऐसे देवताओं को तुम्हारे सरीखे अविवेकियों के बिना "बड़े विवेकी देवा" कौन कह सकता है, ? और जो विवेकी देव हैं वो मुनियों को ही क्या ? परंतु ब्रह्मचारियों को भी शीस नमाते हैं, देखो "उत्तराध्ययन" सूत्र के सोलह में अध्ययन की पंदरहमी गाथा को देवदाणव गधव्वा जक्ख रक्खस्स किंनरा बंभयारी नमसंति दुक्करं जे करंतितं और विवेकी देव जो तथा रूप के मुनि आदि को शीस नमाते हैं तिस से तिन देवों को नमस्कार पुण्य होता है इस कारण तिसको हम शुभ करणी मानते हैं, तथा नमस्कार करने की तो 'राजप्रश्नीय' सूत्र में भगवंत ने स्पष्टपने आज्ञा दी है परंतु नाटकादिक सावद्यकरनी करने की भगवंतों ने आज्ञा नहीं दी अतएव नाटकादि सावद्यकरणी को कोई भी आर्य

विद्वान उपादेय नहीं मान सकते, यदि नाटकादि सावद्य करणी की कहीं भगवदाज्ञा लिखी होय तो तुम दडियो को वह पाठ प्रकट करना चाहिये और जो तुम दडी यह कहते हो कि नाटक करने की जव सुरियाभ देव नें आज्ञा मागी तव वीर भगवान मौन में रहै सो आज्ञा ही समझनी चाहिये यह तुम्हारा कहना अज्ञपने का हैं, रे अज्ञानी मौन रहने से आज्ञा नहीं समझी जाती किन्तु मौन रहने को तो ग्रंथकारों ने एक तरह की नाहीं मानी है यतः भिउडी १ अद्धा लोयण २ चंचल दिट्ठिओ ३ परं मुहेण ४ मौन ५ काल विलंवो ६ नक्कारो छविहो होई इति वचनात् यदि तुम दंडी विवेकी देवों की सर्व प्रकार की करणी को आदरणीय मानते हो तो तुमारे दंडी साधुके मृतक शरीर को गहने गाठे पहिनाय कर क्यों नहीं तिसकी निकासी करते हो, क्योंकि देवों ने तो ऋषभदेव भगवान के साथ जो दस हजार सुसाधु मोक्ष प्राप्त हुए तिनके शव को आभूषण अलंकार पहिनाये तिसके वाद शिविका मे स्थापन कर ले गए ऐसा जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में लिखा है यतः तएण ते भवणवइ जाव वेमाणिया गणहरा सरीरगाइं अणगार सरीरगाइपि खीरोदगेणं ण्हावेति ण्हावेतित्ता सरसणे गोसीस चंदनेण अणुलिंपाति अणुलिंपतित्ता अरिहंताइं दिव्वाइ देव दूस जुयलाइं णियंसति णियंसातित्ता सव्वा-लंकार विभूसियाइं करेति, इत्यादि रे भाइओ देवताओं की सर्वकरणी साधु साध्वी श्रावक तथा श्राविकाओं को आदरणीय नहीं होती जिन करणीओं की वीतराग ने आज्ञा दीहै वोही करणी साध्वादि मनुष्यों को करणी चाहिये, तुम दंडी देवों की

हिंसा क्यों करते हो देवता नोसंयमी हैं, अविरति हैं, तुमको तो भाग्य पुण्योदय से मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है जिसकी इन्द्र और अहमिन्द्र भी वांछा करते हैं अतएव तुमको मनुष्य जन्म के फल पाने चाहिये जिनकी जिनोक्त सिद्धान्तों में आज्ञा है ?

*　*　*　*　*　*　*　*

आगें निर्णिका के इकवीसवें छठ छंद में जो रीति लिखा है कि—
भम्मा—भरम पड़ा है भारी तत्व ज्ञान नहीं पाया है, हिंसा हिंसा ग्रुस से रट कर आज्ञा धर्म भुलाया है, हिंसा दया का भेद न माना जो आगम दरसाया है।

उत्तर—यह लेख भी तेरा हठंडपने का है रे। हिंसारसिक ढूंढी ! भारी भ्रममें तो तूही पड़ा हुआ है जो हिंसामयी धर्म को मानता है और तुझेही तत्वज्ञान नहीं प्राप्त हुआ है जो तू प्रतिमापूजन में अमित त्रस तथा स्थावर जीवों की हिंसा करके निर्जरा मानता है, हमको तो तत्वज्ञान की प्राप्ति वीतराग के वचनानुसार अवश्य हुई प्रतीत होती है क्या कि हम दयामयी धर्म को मानते हैं और यथाशक्ति भावनायुत पंचमहाव्रत रूप धर्म को पालते हैं और पलवाते भी हैं, यहाँ तत्वज्ञान ऋषभदेव भगवान ने सूत्र जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में फरमाया है यतः उप्पण्णे समणे समणाउं निग्गंथाणं निग्गंथीणं पंचमहव्वयाभाइं समा वणगाइं छज्जीव निकाए धम्मं देस माणे विहरइ, तथा वीरसवामी ने भी सूत्र उववाई में यही तत्वज्ञान फरमाया है कि पंचमहाव्रत रूप धर्म तो साधु का है जिसके धारण करने को तथा द्वादश विध जो गृहस्थों का धर्म है जिसके धारण करने को सावधान होओ, तथा समस्त ज्ञान का सार भी भगवंत ने सूयगडांग

सूत्र में यही फरमाया है कि किंचित् भी हिंसा नहीं करे यतः **एयं खु णाणीणो सारं जं न हिंसइ किंचणं ॥ अहिंसा समयं चेव एतावत्तं विया णिया** इति वचनात् अब हम, दंडी तुझसे यह पूंछते हैं कि वह कौनसा तत्वज्ञान है जो हमको नहीं प्राप्त हुवा है? क्यों प्रतिमा पूजनमें हिंसा करना और तिसको धर्म मानना यही अथवा और कुछ ? तथा हिंसा की प्राधान्यता भी तुम दंडी ही मानते हो क्योंकि हिंसा विना धर्म नहीं होता हिंसा विना धर्म हो ही नहीं सकता इस प्रकार वारंवार तुम दंडी रटते हो इससे तुमनें ही वीतराग की आज्ञा जो दया पालने की है तिस दयामयी धर्मको भुलाया है, रे अज्ञ! दयाधर्म तो सूत्र उतराध्ययन के पंचम अध्ययन की तीसमी गाथा में कहा है "दया धम्मस्स खंतिए" इति वचनात् परन्तु कहीं जिनोक्त सूत्रों में "आणा धम्म" ऐसा पाठ कहा है तो तूं वता, रे अज्ञा! परमोत्कृष्ट पर्वाधिराज श्री पर्युषण पर्व है तिस पर्व दिवसके विषें भी तुम दंडी प्रतिमापूजनादिमें षट् काय के जीवों की हिंसा करते हो तथा कराते हो इसके सिवाय क्या आज्ञा धर्म भुलाना वाकी रह गया है,? रे दंडी, हिंसा दुर्गतिदायिनी है और दया निर्वाणपददायिनी है, ऐसा सदुपदेश तो भव्यजनों को हम वारवार अवश्य करते हैं सो निःसंदेह वीतराग की आज्ञानुकूल ही करते हैं, वीतराग देव ने "प्रश्न व्याकरण" सूत्र के प्रथम आश्रवद्वार में प्रकटपने हिंसा को दुर्गति दायिनी कही है, और रे अज्ञानी दंडी, तेरे हुकमसुनिने भी "अध्यात्म प्रकरण" ग्रंथ की पृष्ठ ५०५ मी से लिखा है यदि तेरे नेत्र होंय तौ उसे देख के भ्रम मिटाय

लेना चाहिये, तथा वीतराग देव ने "सूत्र कृतांग" सूत्र में प्रकट फरमाया है कि दया वरं धम्म दुगछ माणा वहा वई धम्म पसंसमाणे। एगंपि से मोयवई असील णिव्वोणि संजाइ कओ सुरेहिं !! अर्थात् दयारूप जैन धर्म की जो निंदा करते हैं, और वधाधम रूप हिंसाधर्म की जो प्रशंसा करते हैं, सो जीव नरक में जाते हैं ? ? और दया भगवती की परिपूर्ण सेवा करने से अनंत सम्यग्दृष्टि जीवों ने मुक्तिपद पाया है, देख ढूंढी, स्वयं वीतराग देव ने "उत्तराध्ययन" सूत्र के १८ में अध्ययन की ३५ मी काव्य में प्रकटपने यह फरमाया है कि

सगरो वि सागरंत भरह वास नराहिवो ?

इस्सरियं केवलं हिंचा दयाए परि णिव्वुए ? ?

अर्थात् भरतक्षेत्र के नराधिप सगरचक्रवर्ति ने दया ही से मोक्ष प्राप्त की ? ? ढूंढी जी, जब सगर चक्रवर्ति दया ही से निर्वाण पद को प्राप्त हुआ तो, "वीतराग देव की आज्ञा दया पालने ही की है," यह तत्व वीतराग के उपर्युक्त वचनों से स्पष्ट सिद्ध है रे हठी ढूंढी, दया पालना सो ही वीतराग की आज्ञा का पालन हैं, क्या आज्ञा दयाधर्म से बाहिर है ? दया धर्म और आज्ञा धर्म में वस्तुतः कुछ भी अंतर नहीं है,केवल तेरी समझ का ही अंतर है, रे मूढ केवल दया ही पालने से भव्य जीवों का संसार परित्त हो जाता है जैसे "ज्ञाताधर्म्म कथांग" सूत्र में वीतराग देव ने फरमाया है कि "मेघकुमार जीका गज भव में सशक की दया पालने से ही संसार परित्त हो गया" ढूंढी जी उस वक्त गज भव में मेघकुमार जी के जीव को कुछ जिनाज्ञा का बोध नहीं था तथापि वीतराग ने यह स्पष्टतया

कहा है कि दया पालने मात्र से उन का संसार परित्त हो गया, अतएव यह श्रद्धान करौ कि दया अवश्य मोक्षदायिनी है, और रे देवानाप्रिय, दया है सो जिनाज्ञायुक्त ही है जिनाज्ञा अयुक्त तो दया हो ही नहीं सकती, और तुम दंडी जो यह कहते हौ- कि "अभव्य जीव अनंती वार तीन करण तीन योग से दया पालके भी इक्कीश में देव लोक तक ही उत्पन्न होते हैं वह मिथ्यादृष्टि क्यों रहते हैं," सो यह कहना भी तुम्हारा अज्ञ पने का है, रे मुग्धो, दया तो अवश्य मोक्षदायिनी ही है और सम्यक्त्व के सम्मुख करनेवाली भी अवश्य है, परंतु अभव्य जीव तो मोक्ष के लिये दया पालता ही नहीं है यह उसके अभव्यपने का स्वभाव है, अभव्य जीव तो जो तीन करण तीन जोगों से दया पालता है सो केवल पौद्गलिक सुखो की ही वाछा से पालता है अतएव दया भगवती उस को वाछित फल प्रदान कर देती है, रे अक्ल के अजीर्ण वाले ओ, इस में दया की क्या अप्राधान्यता है ? यदि कुछ कसर है तो दया पालनेवाले उस अभव्य जीव की ही है जो वह मूढ मोक्ष के अर्थ तनिक भी दया नहीं पालता है, केवल संसारिक सुखों के ही अर्थ दया पालता है, और उसके मिथ्यादृष्टि रहने का भी यही कारण है कि वह मोक्ष के अर्थ दया नहीं पालता, और जमाली इस लिये निन्हव कहलाया कि उस ने तुम दंडीओं की तरह से झूंट वोली, और तुम्हारे गुरु दंडी आनंदविजय जी ने "आज्ञा ही में धर्म है" ऐसा सिद्ध करने के लिये "सम्यक्त्व शल्योद्धार" [प्रवेश] की पृष्ठ २५९ पंक्ति १३ मी से ऐसा लिखा है कि जेकर भगवंत की आज्ञा दया ही में

है तो भी आचारांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कंध के ईर्याध्ययन में लिखा है कि साधुग्रामानुग्राम विहार करता रस्ते में नदी आ जावे तब एक पग जल में और एक पग थल में करता हुवा उतरे सो पाठ यह है:—

भिक्खु गामाणुगामं दूइज्ज माणे अंतरा से नई आगच्छेज्ज एगं पायं जले किच्चा एगं पायं थले किच्चा एवण्हं संतरइ ॥ यहां भगवंत ने हिंसा करने की आज्ञा क्यों दीनी ।

ढूंढी जी, यह लेख तुम्हारे गुरु ढूंढी आनंदविजयजी का नितांत मिथ्या है, क्योंकि नदी उतरने का पाठ जैसा तुम्हारे गुरु ढूंढी आनंदविजयजी ने लिखा है वैसा पाठ आचारांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कंध के ईर्याध्ययन में कहीं भी नहीं लिखा है, अतएव यह पाठ ढूंढी आनंदविजय जी ने मिथ्यात्व मोहिनीय कर्म के उदय से कल्पित लिख दिया है, रे बाबा वचनपरमान करने वाले ढूंढीओ ! तुम्हारे ही मतानुयायी राय धनपतसिंह बहादुर मकसूदाबाद निवासी ने संवत् १९३६ में जो आचारांग सूत्र छपवाया है तिस में भी उपर्युक्त पाठ नहीं है ? ? यह मुक्तकंठ से कहा जाता है कि आप के पक्ष गुरु ढूंढी आनंदविजय जी इस समय उपस्थित होते तो विद्वन्मण्डली में उनकी तर्कविद्या की अच्छी तरह जांच पड़ताल की जाती, क्योंकि अब जमाने में सचाई के ग्राहक हैं, आश्चर्य तो इस बात का है कि तुम्हारे गुरु ढूंढी आनंदविजय जी ने कल्पित पाठ बना के लिख देने में और गणधर रचित सिद्धांत की मिथ्या साक्षी देदेने में भवभ्रमण का भी किंचित भय नहीं किया ? ?

दंडी जी अव हम "आचाराग" सूत्र के दूसरे श्रुतस्कध के तीसरे 'ईर्याख्य अध्ययन' का वह पाठ लिखते हैं कि जिस पाठ को परिवर्त्तन करके तुम्हारे गुरु दंडी आनंदविजय जी ने नवीन कल्पित पाठ वना के लिखा है देखो राय धनपतसिंह वहादुर के छपाये हुवे "आचाराग" सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कंध की पृष्ठ १४४ मे जंघा संतारिम (जल में होके साधु आदि कैसे पार होवें) सो विधि पाठ ऐसा लिखा है:—

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से जंघा संतारिमे उदए सिया से पुव्वामेव ससी सो वरियं कायं पादेय पमज्जेज्जा से पुव्वा मेव पमज्जित्ता जाव एगं पादं जले किच्चा एगं पादं थले किच्चा तओ संजया मेव जंघा संतारिमे उदगे अहारियं रिएज्जा, अव कहिये दंडी जी, आचारांग सूत्र के उपर्युक्त मूल पाठ को आप के गुरु दंडी आनदविजय जी ने किस प्रकार वदल सदल कर लिखा है! और तुम्हारे जैसे "आँखों के अधे, नाम नैन सुखों" को कैसा झाँसा दिया है?? हमको वडे खेद के साथ लिखना पड़ता है कि, सिद्धात का एक अक्षर भी न्यूनाधिक्य करने वाले अनंत संसार परिभ्रमण करते है ऐसा जिनागमों में कहा है तो पाठ के पाठ को रद्दोवदल करने वाले तुम्हारे गुरु दंडी आनंदविजय जी की क्या? दशा होगी, आश्चर्य नहीं कि वह इस समय अपने किये का फल पारहे होंय!!

हाः! तुम्हारें गुरु दंडी आनदविजय जी ने अपने घृणित मंतव्य को सिद्ध करने के लिये कुछ भी भय नहीं किया! सिद्धात में जो दया भगवती की सेवा करने के लियें विधिवाद का कथन है तिसको तुम्हारे गुरु जी ने हिंसा की आज्ञा वतलाय दीनी!

ढूंढी जी "आचारांग" जी सूत्र का यथातथ्य पाठ जो हमने लिखा है उस में हिंसा करने की भगवदाज्ञा कहीं भी नहीं है, उस पाठ में तो भगवंत ने यह विधि साध्वादि को बतलाई है कि जिस से जल काय आदि के जीवों की विशेष हिंसा नहीं होय, रे मुग्धो भगवंतों ने तो वहां भी दया ही पालने की आज्ञा दीनी है परंतु तुम ढूंढीओं को तथा तुम्हारे दयालु गुरु जी को स्पष्ट दया की आज्ञा भी हिंसा की आज्ञा दीनी प्रतीत होती है सो तुम्हारे मिथ्यात्व का पूर्ण उदय है, रे दंभीढूंढी जी, यदि हिंसा करने की ही भगवदाज्ञा होती तो परिमाण से अधिक बार उतरने को भगवान "दयक" दोष क्यों बतलाते तथा "प्रश्नव्याकरण" सूत्रानुसार हिंसा और दया का स्वरूप भी हम भली भांति से जानते हैं, रे हिंसाधर्मी ढूंढी! *हिंसा और दया का भेद तो तूंही नहीं जानता है कि जो* तू "प्रभावना अंग" का बहाना कर के नाटकादि कार्यों में अगणित त्रस तथा स्थावर जीवों की जान मान के हिंसा करता है, और अन्य मनुष्य जीवों को बहिकाय २ करके उन्हों के पास से भी हिंसा कर वाता है; परंतु ढूंढी यह याद रख कि जो दुष्ट हिंसाधर्म की पुष्टि करता है और दया भगवती की उत्थापना करता है वह दया विहीन दुरात्मा जिस समय मृत्यु के मुख में जायगा तब अपनी करनी पर अवश्य ही पछितायगा "पछता पुता पण दया विहूणे" इति आगम वचनात् ? ?

✿ ✿ ✿ ✿ ✿

बाईस में छठ्ठे छंद में ढूंढी तूंने लिखा है कि

मम्मा मुनि श्रावक दो भेदे धर्म जिनेश्वर गाया है। सम्यग्

दृष्टि सुर गण संघ चतुर्विध में फरमाया है। जिनके गुण गाने से परभव धर्म सुलभ बतलाया है ॥

उत्तरः—दंडी जी तुम्हारा यह लेख सत्यासत्य रूप होने से समीचीन नही है, क्योंकि "ठाणाग" सूत्र के दूसरे ठाणे में भगवान ने चारित्र धर्म के दो भेद कहे हैं एक तो आगार चारित्र धर्म और दूसरा अनगारचारित्रधर्म, यथा,

चरित्तधम्मे दुविहे पण्णत्ते तंजहा आगार चरित्तधम्मे चेव अणगारचरित्त धम्मेचेव,

इति वचनात् ॥ दडी जी, यह तो वीतराग का फरमाना सत्य ही है इसमें सदेह ही क्या है? परंतु सम्यग् दृष्टि- देवता चतुर्विधसंघ में सम्मिलित हैं, ऐसा तो भगवंत ने किसी भी सिद्धांत में नहीं कहा है, और तूँ दंडी सम्यग्दृष्टि देवताओं को चतुर्विध संघ में बतलाता है सो नितात सूत्रविरुद्ध प्ररूपणा करता है, क्योंकि "स्थानाग" सूत्र के पंचम स्थान में पंच स्थानक कर के जीव दुर्लभ बोधिपने का कर्म बाधता है, ऐसा वीतराग ने कहा है तहा चतुर्थस्थानक में तो संघ का गृहण किया है यथाः—चाउ **वण्णस्स संघस्स अवण्णं वय माणे ४ विवक तव बंभ चेरा णं देवा णं अवण्णं वयमाणे ५** अब दंडी जी वक्तव्य यह है कि, जो सम्यग् दृष्टि सुर गणों की गिनती संघ में ही होती तो उपयुक्त पाठ में प्रथक बोल के कहने की क्या आवश्यकता थी? परंतु वीतराग ने सघ का बोल तो चौथा कहा और देवताओं का बोल पांचमा कहा इस से स्पष्ट सिद्ध है कि "सम्यक्त्वी देवता संघ में नहीं

गिने जावे," और भवान्तर के विषे पूर्ण रीति से तप आश्चर्य पालन किया है ऐसे देवताओं के कर्णवाद करने से जीव सुलभ बोधि होता है इस कथन को हम भी सिद्धांतोक्त मानते हैं ??

* * * * *

तेईसवें छप्पै छंद में ढूंढी दूने लिखा है कि यथ्या—यह है पाठ ठाणांगि: और भी यह फरमाया है । जो अवगुण बोले सुरगण का, दुर्लभ बोधि कहाया है । अवरज ऐसे पाठ देख कर जरा न मन में आया है ।

उत्तर—ढूंढी जी तुम्हारे इस लेख का उत्तर तुम्हारे बाईस में छप्पै छंद के उत्तर से ही समझ लेना, ढूंढी जी महाश्चर्य तो हम को इस बात का है कि, तुम को आश्चर्य किस बात पर हुआ है ! और इस "ठाणांग" के पाठ से रे हिंसाकर्म्मी ढूंढी, तेरे कौन से मंतव्य की सिद्धि होती है ? सो लिख कर प्रकट करेगा तो तिस का भी यथेष्ट उत्तर यथावकाश दिया जायगा ??

* * * * *

चौबीस में छप्पै छंद में ढूंढी जी आप ने द्वेषानल से प्रज्वलित हो कर अपनी करणी का फल यह लिखा है कि रर्रा—रो रो नहीं छूटेगा आप ही कर्म कमाया है । उन्मारग को मारग समझा यह कलियुग की माया है ॥ प्रभु की पूजा त्याग करा के अपने आप पुजाया है ।

उत्तर—ढूंढी जी, जो जीव पाप कर्म कमावेगा उस को पाप कर्म का फल तो अवश्य[ही] भोगना पड़ेगा "कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थी" इति आगम वचनात् । परंतु रे ढूंढी,

हमारी समझ से तो तूँ ही रो २ के नहीं छूटेगा, क्योंकि तूँ अठारह में पापस्थानक की पोषणा करता है और धर्म के निमित्त षट् काय के जीवों की हिंसा करता है दूसरे से कराता है तथा करते हुवे को भला भी जानता है और "प्रश्न व्याकरण" सूत्र के प्रथम अधर्म द्वार में वीतराग ने प्रकट फरमाया है कि, "धम्मा हणंति" अर्थात् जो जीव धर्म के निमित्त षट् काय के जीवों की हिंसा करते हैं वह मंद बुद्धि (मिथ्यात्वी) है और उस हिंसा का यह परिणाम होगा कि वह अनंत ससार परिभ्रमण करेंगे, और दंडी जी, हमने उन्मार्ग को भी मार्ग नहीं समझा है हमने तो "उत्तराध्ययन" सूत्र के अष्टाविंशति म अध्ययन में हमारे वीर पिता ने जो ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप रूप मोक्ष का मार्ग बतलाया है उस को ही मोक्ष का मार्ग समझा है, रे दंडी उन्मार्ग का तो तूँ ने ही मार्ग समझा है जो हिंसा युक्त प्रतिमा पूजन रूप उन्मार्ग को मोक्ष का मार्ग मानता है, तथा रे मृषावादी दंडी, प्रभु की पूजा का त्याग तो हमने किसी को भी नहीं कराया है और न कराते हैं किन्तु सिद्धा-तोक्त रीति से प्रभु की निरवद्य पूजा हम स्वयं भी करते हैं और अन्य भव्य जीवों को करने का सदुपदेश भी देते हैं परंतु रे मुग्ध दंडी, प्रभु का वहाना कर कर के जो शठ प्रतिमा [नकल] की हिंसात्मिका पूजा करते हैं उन को हम अवश्य मिथ्यात्वी मानते हैं, और हमारी [सनातन जैन साधुओं की] पूजा भक्ति को देख कर जो तूँ जलता है सो तेरे पाप कर्म का उदय है ??

* * * *

पचीसवें छल्छंद में ढूंढी दू ने लिखा है कि भट्टा–सरस द्रव्य से पूजा वीर प्रभु जब आया है। कल्प सूत्र का पाठ नभर नहीं मूढ ढुढ़क पाया है ॥ भज्ञानी ढुंढकने पर्युषण में कल्प छपाया है ॥

उत्तर–ढूंढी जी, तुम्हारा यह लेख नितांत मिथ्या है, क्योंकि "कल्प सूत्र" के मूल पाठ में ऐसा कहीं भी नहीं लिखा है कि, जब वीर प्रभु आये तब अमुक ने छप्र द्रव्य से पूजा करी, रे ढूंढी, वह पाठ यदि तेरी ही नजर से गुजरा होवै तो ढूंढी "कल्प सूत्र" में वह पाठ कौनसा है सो बतला? अन्यथा इस "ढूंढी दंभ दर्पण" में अनेक स्थल पर प्रकट करें तुम को मृषावादी सिद्ध किया है उन में एक स्थल यह भी है! और रे भाइ ढूंढी, हम तो "कल्प सूत्र" के अविरुद्धांश को सर्वदा प्रामाणिक मानते ही हैं, विरुद्धांश को तो कोई भी आर्य विद्वान प्रामाणिक नहीं मान सकता और पर्युषण में हम ने कल्प को स्थापित ही कब किया था जिस को हम छपाते! रे अनभिज्ञ ढूंढी, वीर भगवान के निर्वाण से नवसे अस्सी में वर्ष में 'आनंदपुर' के 'ध्रुवसेन' राजा को कारण वश यतियों ने पर्युषण पर्व में "कल्प सूत्र" सुनाया था बस तब ही से सभा के समक्ष में "कल्प सूत्र" के बांचने की प्रवृत्ति हुई, यह वर्णन तुम्हारे ही मान्य "कल्पसूत्र" की टीका और भाष्य में लिखा है, यथा नव शत असीति वर्षे वीरात्सेनांगजार्थे मानदे सभ समक्षं समई मारब्धो वाचितुं विज्ञै' इति वच-नात् ॥ ढूंढी जी हम ने तो "कल्प सूत्र" की न तो प्रवृत्ति की है और नहीं निवृत्ति की है, परंतु यह हम अवश्य कहते हैं

कि. संपूर्ण "कल्प सूत्र" अर्वाचीन काल का बना हुवा है और इसीलिये चतुर्थ कालविषें पर्युषण पर्व में इस के बांचने की प्रवृत्ति नहीं थी तूँ पर्युषण में कल्प हटाने का आल हमारे शिर पर वृथा लगाता है सो तेरी धृष्ठता है ??

*　　　*　　　*　　　*　　　*

छव्वीश में छल छंद में दंडी तूँ ने लिखा है कि **वस्त्रा-विधि काउसग्ग करने का आवश्यक दरसाया है दक्षिण हाथ मुह पत्ती रखनी वामें ओघा रखाया है। शास्त्र विरुद्ध अरे मूरख क्यों मुख पर पाटा लाया है**

उत्तर.—दंडी जी उक्त लेख तुम्हारे मुग्धपने का बोधक है, क्योंकि दक्षिण हाथ में मुखवस्त्रिका तथा वामें हाथ में ओघा रख कर कायोत्सर्ग करना ऐसी विधि "आवश्यक" सूत्र के मूल पाठ में कहीं भी नहीं लिखी है, और रे हिंसा धर्मी दंडी, हम शास्त्र से विरुद्ध नहीं किन्तु स्वशास्त्र तथा परशास्त्रो से मुख पर मुखवस्त्रिका बाधना निर्विवाद सिद्ध है अतएव मुख पर मुखवस्त्रिका बाधते हैं, रे मंगल दंडी, मुख पर मुखवस्त्रिका बाधना हम अनेक ग्रंथों के प्रमाणों से तेरे अष्टम छल छंद के खंडन में भली भाति सिद्ध कर चुके हैं, इसलिये पिष्टपेषण समझ कर यहा नहीं लिखा है, तथा उपर्युक्त छंद के नोट में तूँ ने लिखा है कि यदि यह श्री भद्रबाहु स्वामी चतुर्दश पूर्वधारी कृत निर्युक्ति का पाठ मंजूर नहीं है तो जिस विधि से ढुंढिये काउसग्ग करते हैं तो विधि अपने माने शास्त्रों के मूल पाठ में दिखा देवें वरना पूर्वोक्त पाठ से

ढुंढियों का मुख पर पाटा बांधना मन' कल्पित सिद्ध हो चुका है ?

उत्तर—ढूंढी जी "चतुर्दश पूर्वधारी श्री भद्रबाहु स्वामि कृत यह निर्युक्ति है" यह कथन सिद्धान्तोक्त न होने से हम तिस निर्युक्ति के अविरुद्धांश को प्रमाण मान सकते हैं परन्तु तेरी लिखी हुई कायोत्सर्ग की विधि को तो हम गप्प मानते हैं ऐसी गप्पों को तो तुम सरीखे गप्पी ही प्रमाण मान सकते हैं प्रेक्षावान तो कोई भी नहीं मानेगा, अब ढूंढी जी हम [जैन सुसाधु] जिस विधि से कायोत्सर्ग करते हैं वह सूत्र पाठ तुम का लिख दिखाते हैं, देखो सूत्र का पाठ "तस्सुत्तरी करणेणं पायच्छित्त करणेणं विसोही करणेणं विसल्ली करणेणं पावाणं कम्माणं निग्घायं णट्ठाए ठामि काउस्सग्गो अण्णत्थ ऊससिएण निससिएणं खासिएणं छीएणं जंभाइएणं उड्डुएणं वाय निसग्गेण भमलिए पित्त मुच्छाए सुहुमेहिं अंग संचा लहिं सुहुमेहिं खेल संचालेहिं सुहुमेहिं दिट्ठि संचालेहिं एवमाइ एहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहिउ हुज्जमे काउसग्गो जाव अरिहंताणं भगवताणं णमुक्कारेणं नपारेमि तावकायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वो सिरामि"

इस आवश्यक सूत्र के पाठानुसार हम कायोत्सर्ग करते हैं, यह हमारे मान्य सूत्र का पाठ कायोत्सर्ग करने की विधिका तुमको लिख दिखाया है अब यह तुम ढुंढीयों का हाथ में मुख पुंजना रखना मनःकल्पित सिद्ध हो चुका है ? ?

✿ ✿ ✿ ✿ ✿

सत्ताईशवे छल छंद में दंडी तूं ने लिखा है कि—

शश्श=शरमाता नहीं मूरख कैसा सांग वनाया है।
कांन नाक और गांड के पाटा कसकर क्यों न लगाया है॥
एक को वांधा अनेक को छोड़ा क्या अज्ञान घराया है।

उत्तरः—दंडी जी सत्ताईशवा छल छंद लिखकरतो तुमने तुम्हारी नीच वुद्धि का पूर्ण परिचय दिखलाया है। वाह! दंडी जी। शास्त्र विरुद्ध स्वाग [वेष] तो तुम धारण करो और शरमामें हम, यह कहा का न्याय है? जो मूढ शास्त्रविहित श्वेत मानोपेत वस्त्रों को छोड कर शास्त्र विरुद्ध पीतवस्त्रों को धारण करते हैं वो अज्ञानी मूढ श्वेताम्वर कहते हुए शरमामेगें, हम क्यों शरमाने लगे, तथा कान नाक आदि के कस कर पाटा वाधन की निःप्रयोजन हमें कुछ आवश्यकता नहीं है यदि तेरे कान नाक आदि में कोई विस्फोटक हो गया हो तो तूं तिस पर कस कर पाटा वांध सकता है तेरे गुरु आत्माराम जी ने सम्यक्त्व शल्योद्धार [प्रवेश] का पृष्ठ ५३ की तथा ५४ की मे ऐसा सूत्रपाठ लिखा भी है किः—

से भिक्खु वा भिक्खुणी वा ऊसासमाणेवा निसासमाणेवा कासमाणेवा छीयमाणेवा जंभायमाणेवा उड्डुवाएवा वायणिसग्गे वा करेमाणे वा पुव्वामेव आसयंवा पोसयेंवा पाणिणा परिपेहित्ता ततो सजयामेव ओसासेज्जा जाव वाय णिसग्गवा करेज्जा

इस का भावार्थ यह है कि साधु अथवा साध्वी को उच्छ्वास निःश्वास लेते, खासी लेते, छींक लेते, उवासी लेते, डकार लेते,

हुए अथवा कायोत्सर्ग करते (पारते) हुए के पहिले मुख को और गुदा को हाथ से ढकलेना जिसके पिछे वस्त्रा से उच्छ्‌वासादिकेने तथा कायोत्सर्ग करना, सो ढूंढी तेरे गुरु के इस लेख के अनुसार तो तूं उच्छ्‌वासादि लेते हुए मुख को तथा पारते वक्त गुदा को हाथ से ढकना तो होगा ही परंतु तूं तेरे गुरुके कथन से और भी जादा क्रिया करना चाहता है तो नाक, गांड के पाठा भी कसकर बांधले और हमने न तो एक को बांधा है और न अनेक को छोडा है अतएव यह लिखना तेरा नितान्त मिथ्या है, और जो तूंने इस सम्यक्त्व के मोक्ष में लिखा है कि—

ढुंढियों का कहना है कि नाक से जीव मरते हैं उनकी रक्षा के निमित्त पाटा बांधा जाता है तो नाक वगैरह को भी बांधना चाहिये ? नाक तो वहां से भी निकलती है !

उत्तर—रे हिंसारत ढूंढी, तेरा यह लेख नितांत मिथ्या है, क्योंकि सनातन जैन साधुओ कोईभी इस बात को नहीं कहते हैं कि "मुख की स्वाभाविकी नाक से जीव मरते हैं यह जिनागमों में कहा है और इसीलिये मुख पर मुखवस्त्रिका बांधते हैं" किन्तु स्वसमयानभिज्ञ ढूंढी, तेरा यह लेख तो तेरे ही समान धर्म वालेओं पर संघटित होता है, देख तेरे ही शास्त्र विशारद जैनाचार्य ढूंढीधर्मविजय जी तारीख २४ नवम्बर सन १९१२ के "जैनशासन" की दूसरी पुस्तक के पंद्रह में अंक की ६ पृष्ठ में स्पष्टतया यह लिखते हैं कि "मुखादि वा वध्यन्ते पापन्ते घोर गादिमिः" उक्त अंक की ही पृष्ठ७

मी में आप ही गुर्जरभाषा में इसका भावार्थ लिखते हैं कि "मुख मां थी नीकलतां वायु वडे [से] पण वायु कायना जीवो पीडा पामे छे"

परतु आश्चर्य इस बात का है कि "मुख की वाफ़ से जीव मरना तो तुम्हारे शास्त्रविशारद जी मानते हैं मगर रक्षा का प्रयास कुछ भी नहीं करते यदि रक्षा करना चाहते हैं। तो तुम्हारे जैनाचार्य जी को चाहिये कि सदा काल मुख से मुख वस्त्रिका लगाये हुवें रहें! रे मृषावादी ढ़ूंडी, सुसाधु तो ऐसा कहते हैं कि, खुले मुख से बोलने से वायुकाय आदि जीवों की हिंसा होती है अत एव खुले मुख से बोलना सो सावद्य वचन है और इसीलिये (कभी प्रामादिक अवस्था मे भी खुले मुख से कोई शब्द नहीं कहने में आवे) मुख पर मुखवस्त्रिका को लगायें रहते हैं, सो सुसाधुओंका कथन सर्वथा सत्य है क्योंकि "भगवती" सूत्र के सोलह में शतक के दूसरे उद्देशे में गौतम स्वामी के पूछने पर स्पष्टतया वीर भगवान ने यह फरमाया है कि खुले मुख से बोली हुई भाषा सावद्य होती है यथा

सक्केणं भंते देवंदे देव राया कि सावज्जं भासं भासति? अणवज्जं भासं भासति?

अर्थः—गौतम स्वामि प्रश्न करते हैं कि, हे भगवान्! देवेन्द्र सक्रेंद्र देवराजा सावद्य भाषा बोलता है अथवा अनवद्य भाषा बोलता है?

गोयमा सावज्जंपि भासं भासति! अणवज्जंपि भासं भासति!

अर्थः—परमात्मा उत्तर देते हैं कि, हे गौतम! सावद्य भी बोलता है और अनवद्य भी बोलता है!

से, के, णट्ठे णं भंते एवं वुच्चति? सावज्जंपि भास भासति? अण वज्जंपि भासं भासति?

अर्थः—पुनः गणधर प्रश्न करते हैं कि, हे भगवान्! किसलिये ऐसा कहते हो कि "सावद्य और अनवद्य दोनों भाषा बोले?

गोयमा! जाहे णं सक्के देविंद देव राया सुहुम काय अणिज्जूहित्ता ण भास भासति! ताहे सक्के देविंदे देवराया सावज्जं भासं भासति!

अर्थः—और प्रभु उत्तर देते हैं कि, जिस समय सुरेन्द्र मुख से सूक्ष्म काय [वस्त्र तथा कर आदि] लगा कर नहिं बोलता है अर्थात् खुले मुख से बोलता है तब तो सावद्य भाषा बोलता है। और

जाहे णं सक्क देविंदे देवराया सुहुम कार्यं णिज्जूहित्ताणं भासं भासति! ताहे सक्के देविंदे देव राया अण वज्जं भास भासति!

अर्थः—जब सुरेन्द्र मुख से सूक्ष्म काय [वस्त्र तथा हाथ आदि] लगाकर अर्थात् मुख को ढांप कर बोले तब अनवद्य भाषा बोलता है। बस! हमारा भी वक्तव्य अब इतनाही है कि "खुले मुखसे बोलने में वायुकायादि जीवों की हिंसा अवश्य होती है" यह कथन सनातन जैन साधुओं का उपर्युक्त सूत्र के प्रमाणानुसार सर्वथा सत्य है; और उस हिंसा से बचने के लिये

ही मुख पर मुखवस्त्रिका बांधना, यह जिनोक्त मर्यादा है; जो शठ मुख पर मुख वस्त्रिका नहीं बांधते वह उक्त हिंसा से कदापि नहीं वच सकते जैसे कि तुम्हारे ही तारीख ६ अगष्ट सन् १९१३ के "जैनशासन" पुस्तक ३ के ७ में अंक की पृष्ठ ४८ में, विद्याधर जी लिखते हैं कि—

वहुत से साधु लोग मुंहपत्ती का उपयोग न रख कर के मन में आता है उस तरह श्रावकों के साथ वार्तालाप करते हैं, परंतु यदि आनेवाला श्रावक मुंह के आगे कपडा रख कर के मुनिराज के सामने वार्तालाप करे, तो खुद मुनिराज को लज्जित होकर मुहपत्ती का उपयोग रखना पडे ! !

अट्ठाईशवें छलछंद में ढुंडी तूंने लिखा है कि—

पप्पा—षट अंग में द्रोपदी पूजा वर्णन आया । है गर्दभ मिसरी ऊंट दाख सम कुमति मन नहीं भाया है। शत्रुंजय पुंडरगिरि ग्याता परमारथ नही पाया है।

उत्तरः—यह जो तूंने लिखा है सो कुगुरु की कहानी सुन कर लिखा है यदि तूं गुरुगम्य से छट्ठे अंग की स्वाध्याय करता तो तुझे यह ज्ञान हो जाता कि द्रौपदी ने उद्वाह के समय किस देव की मूर्त्ति पूजी थी, हे भद्रक द्रौपदी ने विवाह के समय जिस प्रतिमा की पूजा की थी वह तीर्थंकर भगवान की नहीं संभवती। कारण कि तिस प्रतिमा के पास मयूर पिछि आदि वह उपकरण थे जो यक्ष देवों की प्रतिमा के पास होने सूत्र में कहे

अर्थः—परमात्मा उत्तर देते हैं कि, हे गौतम! सावद्य भी बोलता है और अनवद्य भी बोलता है।

से, के, ण्ट्ठे णं भंते एवं वुच्चति ? सावज्जपि भासं भासति ? अण वज्जंपि भास भासति ?

अर्थः—पुनः गणधर प्रश्न करते हैं कि, हे भगवान्! किसलिये ऐसा कहते हो कि "सावद्य और अनवद्य दोनों भाषा बोले ?

जाहे णे सक्के देविंद देव राया सुहुम काय अणिज्जु हिचा ण भास भासति। ताहे सक्के देविंदे देवराया सावज्जं भासं भासति।

अर्थ—और प्रभु उत्तर देते हैं कि, जिस समय शक्रेन्द्र मुख से सूक्ष्म काय [वस्त्र तथा कर आदि] लगा कर नहिं बोलता है *अर्थात् खुले मुख से बोलता है तब तो सावद्य भाषा बोलता है*। और

जाहे णं सक्क देविंदे देवराया सुहुम काय णिज्जु हित्ताण भासं भासति। ताहे सक्के देविंदे देव राया अण वज्जं भासं भासति।

अर्थः—जब शक्रेंद्र मुख से सूक्ष्म काय [वस्त्र तथा हाथ आदि] लगाकर अर्थात् मुख को ढांप कर बोले तब अनवद्य भाषा बोलता है। बस! यहीं भी वक्तव्य अब इतनाही है कि "खुले मुखसे बोलने में वायुकायादि जीवों की हिंसा अवश्य होती है।" यह कथन सनातन जैन साधुओं का उपर्युक्त सूत्र के प्रमाणानुसार सर्वथा सत्य है, और उस हिंसा से बचने के लिये

में श्रीमदभयदेवजी कहते हैं कि **"जिण पडिमाणं अच्चणं करेइत्ति एकस्यां वाचनायामेतावदेव दृश्यते"** इस कथन से स्पष्ट सिद्ध होता है कि वाचनान्तर के वहाने से सावद्याचार्यों ने ज्ञातासूत्र के मूल पाठ मे विशेप पाठ अपने मन्तव्य को सिद्ध करने के लिये वढा दिया है सो तुझको विचार करना चाहिये, और गर्दभ को मिश्री तथा ऊट को दाख जैसे नहीं भाती तैसे हिंसाधर्मीओं के मन को सिद्धान्त के शुद्ध अर्थ नहीं भाते यह वार्त्ता निस्संदेह है, तथा ज्ञाता जी सूत्र में शत्रुंजयादि पर्वतों का वर्णन आया है अरु तिनपे पाडवादि अनेक मुनियों ने अनशन व्रत धारण कर आत्मकल्याण किया है यह तो हम मानते हैं परंतु ज्ञाता धर्मकथाग में ऐसा तो कहीं भी नहीं लिखा है कि शत्रुंजयादि पर्वतों की यात्रा करना अरु तहा जाके अमित जीवों की हिंसा करके प्रतिमा पूजन करना श्रावकाचार है, यदि तुझ दंडी ने ज्ञाता सूत्र के कोई पाठ का विशेष परमार्थ पायाहो तो तूंही प्रकट कर किस पाठ का यह परमार्थ है कि शत्रुंजयादि की यात्रा करनी चाहियै ??

* * * * * *

उनतीशवें छलछद में दंडी तूंने लिखा है किः—

सस्सा—संघ प्रभु दर्शन का कुमति त्याग कराया है, अपने दर्शन खातर सेवक गणको नियम फसाया है, कौशिक सम कुमति घट अंदर घोर अंधेरा छाया है ॥

उत्तरः—यह लेख तेरा नितान्त मिथ्या है क्योंकि जैन सुसाधु प्रभुके दर्शनों का त्याग किसी को भी नहीं कराते हैं परंतु प्रभु

है। अत एव द्रौपदी ने जो प्रतिमा की पूजा की है सो तीर्थंकर की प्रतिमा की पूजा नहीं की, तथा उद्वाह के समय द्रौपदी मिथ्यात्व युक्त थी क्योंकि जिसके पूर्व कृतनिदानकर्म का उदय था "पुव्व कय णियाणेण चोइ जमाणी" इति आगमवचनात् निदान पूर्ण होने से पहिले सम्यक्त्व आना सिद्धान्त में कहीं कहा नहीं, और ज्ञाता धर्मकथांग में विवाह के प्रथम द्रौपदी के सम्यक्त्व माने का कोई पाठ भी नहीं है, यदि द्रौपदी को उद्वाह के पहिले सम्यक्त्व प्राप्त होगई मानते हो तो वह सूत्रपाठ ज्ञाता जी का प्रकट करो। अन्यथा द्रौपदी का प्रतिमापूजन रूप कर्तव्य मिथ्यात्व दशा का है अतएव सम्यक्त्वि यों को आदरणीय नहीं हो सकता, यदि कहोगे द्रौपदी का नियाणा मंद रसका था इससे उसके नियाणा पूर्ण होने के पहिले ही सम्यक्त्व की प्राप्ति होगई थी तो यह कथन भी तुमारा बालपने का है क्योंकि मंद रस का जिसका नियाणा होता है तिसको भी नियाणा पूर्ण होने पर ही सम्यक्त्वादि आते हैं परन्तु नियाणा पूरा हुये बिना सम्यक्त्वादि आते नहीं अतएव पाणि ग्रहण के समय द्रौपदी मिथ्यात्व युक्त थी तथा ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र के टीकाकार श्रीमदभयदेव जी के लेख से भी यही सिद्ध होता है कि ज्ञाताधर्मकथांगसूत्र की प्राचीन वाचना में नमोत्थुणं देने का पाठ नहीं था जिससे द्रौपदी को सम्यक्त्व युक्त समझी जाय ज्ञाता जी सूत्र की प्राचीन वाचना में (प्रति में) केवल इतनाही पाठ था कि "जिण पडिमाणं अच्चणं करेइ" देखो रायधनपतिसिंह जी बहादुर का संवत् १९३३ का छपाया हुआ ज्ञाताधर्मकथांगसूत्र की पृष्ठ १२५५ की पंक्ति १

में श्रीमदभयदेवजी कहते हैं कि "जिण पडिमाणं अच्चणं करेइत्ति एकस्यां वाचनायामेतावदेव दृश्यते" इस कथन से स्पष्ट सिद्ध होता है कि वाचनान्तर के वहाने से सावद्याचार्यों ने ज्ञातासूत्र के मूल पाठ मे विशेप पाठ अपने मन्तव्य को सिद्ध करने के लिये वढा दिया है सो तुझको विचार करना चाहिये, और गर्दभ को मिश्री तथा ऊंट को दाख जैसे नहीं भाती तैसे हिंसाधर्मीओं के मन को सिद्धान्त के शुद्ध अर्थ नहीं भाते यह वार्त्ता निस्संदेह है, तथा ज्ञाता जी सूत्र में शत्रुंजयादि पर्वतों का वर्णन आया है अरु तिनपे पाडवादि अनेक मुनियों ने अनशन व्रत धारण कर आत्मकल्याण किया है यह तो हम मानते हैं परंतु ज्ञाता धर्मकथाग में ऐसा तो कहीं भी नहीं लिखा है कि शत्रुंजयादि पर्वतों की यात्रा करना अरु तहा जाके अमित जीवों की हिंसा करके प्रतिमा पूजन करना श्रावकाचार है, यदि तुझ दंडी ने ज्ञाता सूत्र के कोई पाठ का विशेप परमार्थ पायाहो तो तूही प्रकट कर किस पाठ का यह परमार्थ है कि शत्रुंजयादि की यात्रा करनी चाहिये ??

* * * * * *

उनतीशवें छलछंद में दंडी तूंने लिखा है किः—

सस्सा—संघ प्रभु दर्शन का कुमति त्याग कराया है, अपने दर्शन खातर सेवक गणको नियम फसाया है, कौशिक सम कुमति घट अंदर घोर अंधेरा छाया है ॥

उत्तरः—यह लेख तेरा नितान्त मिथ्या है क्योंकि जैन सुसाधु प्रभुके दर्शनों का त्याग किसी को भी नहीं कराते हैं परंतु प्रभु

की प्रतिकृति को ही जो प्रभु मान के पूजनादि करते हैं जिनको आप अवश्य मानते हैं, तथा किसी भी श्रावक को हमने अपने दर्शन करने का नियम नहीं कराया है, और उल्लूक के समान रे मंगलसेवी तेरे हृदय में ही घोर अंधकार छारहा है जो तू जैन सुसाधुओं पे मिथ्या आक्षेप करता है ? ?

*   *   *   *   *

तीसरे छन्दर्शन में ऐसी तूने लिखा है कि—

हहा—हमा नहीं माधव तुमको निर्लज्ज निपट कहाया है, पक्षपात वस होकर खींचातानी चिल्लाया है। दोष नहीं इसमें हमारा है निज करणी फल पाया है, सीख मान सद्गुरु की माधव विरथा जन्म गमाया है॥

उत्तर।—अंतिम छन्दर्शन लिखकर तो तूंने अपनी छिपाकिय जाहिर की है अस्तु इस अपशब्दों का उत्तर अपशब्दों से देना नीच पुरुष समझते हैं अतः हम से उत्तर नहीं देते हैं परंतु इतना उत्तर देना उचित समझते हैं कि सुसाधु वेश्या के कहे का बुरा नहीं मानते हैं क्योंकि वेश्या तो सुसाधुओं को आक्षेप परिसह दिया ही करते हैं, हमें आश्चर्य तो इस बात का है कि सद्गुरु का शिक्षा मान वृथा जन्म कैसे गमाया जाता है जो तूने त्रिशिका के प्रत्येक छन्दर्शन के चतुर्थ चरण में कहा है, रे मंगल अज्ञ जो भव्य सद्गुरु की शिक्षा मानता है वह कभी अपने जन्म को वृथा नहीं गमाता है अरु जो मूढ़ अपने नर जन्म को वृथा गमाता है वह सद्गुरु की शिक्षा कभी नहीं मानता है अतएव सीख मान सद्गुरु की माधव विरथा जन्म

गमाया है" यह कथन तेरा स्ववचन विरोध दूपण से दूपित है, अतएव निंदनीय है, अब हम यह लिख कर अपनी लेखनी को विश्राम देते हैं कि शासनेश वीरप्रभु हमारे लेखद्वारा तेरा मिथ्यात्व दूर कर तुझे सम्यक्त्व प्रदान करें ? ? आग्रंथमा मंगल सिंह दंडी ने उद्देशी ने वल्लभविजय जी अमरविजय जी ने पण यथा साध्य सुष्टु शब्दोंमा हित शिक्षा आपवामा आवीछे तेमा वीतरागना वचनो थी विरुद्ध लखवामा आव्यूं होय एवूं तो सभवतो नथी। तो पण कोई लखाण प्रमाद वस तथा दृष्टि दोप थी जिनोक्त सिद्धान्तो थी विरुद्ध लखाई गयू होय ते माटे केवलीनी साक्षी ऐ शुद्धान्तकरणथी मिच्छामि दुक्कडं देऊं छूं और यह आशा राखूं छु कि—

कुछभी तूने अगर दिया है इन वातों पर ध्यान। अल्प कालमें हो जावेगा तो सूजान सज्ञान॥ रे जड़मति के कोश नहीं तो इस दुनियांके वीच। तन अपना अनमोल गँवाया रहा नी···का नी···॥

शान्तिः १ शान्तिः १ शान्तिः १